रामाश्रम सत्संग डिजिटल प्रकाशन

संत-वचन

(भाग ३)

परमसंत डा. श्री कृष्णलाल जी महाराज

के प्रवचनों का संकलन

रामाश्रम सत्संग (रजि०)

गाज़ियाबाद (उ०प्र०)

प्रकाशक :

आचार्य, रामाश्रम सत्संग (रजि०)

गाज़ियाबाद (उ०प्र०)

प्रथम संस्करण ८०० (१९७१)

द्वितीय संस्करण १००० (१९८८)

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य : ६,

मुद्रक :

विवेक मुद्रणालय, जी०टी०रोड, गाज़ियाबाद

फोन: ३२७०,३९०३

निवेदन

परमसंत डाक्टर श्री कृष्णलाल जी , सिकंदराबाद (उ०प्र०) के प्रवचनों के तीसरे भाग का दूसरा संस्करण परमार्थ प्रेमियों कि सेवा में प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यंत हर्ष होता हैं। इसमें १९६३ के आगे के जो भी प्रवचन संकलित हो सके वे छापे गये हैं। इससे पहले के प्रवचन 'संत वचन' (भाग २) में छप चुके हैं। आशा हैं प्रेमीजन इन्हें ध्यान पूर्वक पढ़ेंगे और इसमें दिए हुए उपदेशों को व्यवहारिक रूप देने का प्रयत्न करेंगे।

दिल्ली — दास

दि० १६-१-७१ — करतार सिंह

विषय-सूचि

विषय

निवेदन

१. मन हीं बंधन का कारण हैं

२. आत्मा का जगाना

३. अभ्यास में उन्नति न होने का कारण

४. भक्ति

५. इच्छाओं तथा वासनाओं कि उपरति, सतगुरु की

कृपा और अभ्यास मनुष्य को परम लक्ष्य पर पहुंचा देता हैं

६. संतों का परमार्थ

७. अभ्यासियों के लिए नसीहतें, गुरु के प्रति श्रद्धा, प्रेम, व् दीनता

८. दीनता संतों के चरणों में बैठने से मिलती हैं

९. संतों के साथ सोने का लाभ अवतारों और संतों में भेद

१०.संतों का निर्मल परमार्थ व् आत्मा कि आज़ादी

११. हमारा तरीका

१२. शरण कि महिमा

१३. दुनियां से तरने का साधन

१४. राज़ी व् रजा

१५. सच्चे उद्धार का तरीका

१६. परमार्थी के रस्ते कि रुकावट

एक प्रेम के नाते को छोड़कर मैं और किसी नाते को नहीं जानता। केवल प्रेम और वह भी निस्वार्थ प्रेम । जो लोग बिना अपने स्वार्थ के मुझे प्रेम करते हैं, चाहे वे सज्जन हैं या दुष्ट, मैं उन्हें प्रेम करता हूँ। वे मेरे हैं और मैं उनका । वे सदैव मुझ पर आश्रित रह सकते हैं और वे देखेंगे कि मैं सदैव उनकी सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ ।

---परमसंत **डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज**

सिकंदराबाद उ.प्र.

(जन्म १५-१०-१८९४ - निर्वाण १८-०५-१९७०)

मन हीं बंधन का कारण है

(प्रवचन गुरुदेव – दिसम्बर १९५७)

मनुष्य का शरीर देखने में एक नजर आता है लेकिन अगर गौर से देखा जाय तो इस स्थूल शरीर के अंदर कई शरीर है। यह स्थूल शरीर मिटटी पानी आग हवा और आकाश की मिलौनी से बना है। इसमें खाल मांस हड्डी नाड़ी सब ही शामिल है। इसको अन्नमय कोष कहते है। पहला शरीर तो इन सब वस्तुओं कि मिलौनी है। इसलिए इसे पंच भौतिक कहते है।

इसके अंदर दूसरा प्राणों का शरीर है। प्राण या (Energy) उस शक्ति को कहते है जो भोजन पानी हवा और रौशनी से पैदा होती है। यह पांच प्रकार की है। कहीं तो यह खाने को जिगर में पहुंचाती है और बेकार हिस्से को मल के शक्ल में शरीर से निकल कर शरीर से बाहर फेंकती है , कही हवा को बहर ले जाकर फेफड़ो में पहुंचाती है, हवा का अच्छा हिस्सा ऑक्सीजन (oxygen) खून को साफ़ करता है और खून ऑक्सीजन को जिस्म के हर हिस्से में पहुंचाता है जिससे जिन्दगी कायम है और हवा के बुरे हिस्से यानि कार्बन डाइऑक्साइड (Carbon Dioxide) की शक्ल में शरीर से बाहर निकालता है। कभी ख़राब खून को तमाम शरीर से इकठ्ठा करके दिल के सीधे हिस्से में ले जाता है और फिर फेफड़े के पास और फिर उलटी तरफ और फिर तमाम शरीर में ले जाता है। यह प्राण सारे शरीर को संचालित और संतुलित रखता है।

तीसरा शरीर जो प्राण से परे है, ख्यालात का शरीर है जो मन का शरीर है। चौथा बुद्धि या अक्ल का शरीर है। पांचवां आनन्द का शरीर है। इन शरीरों को कोष भी कहते हैं क्योंकि यह आत्मा से उपर बतौर गिलाफ चढ़े हुए है। इन सबके परे आत्मा है जो सबको जान देती है और सबका आधार है। अगर यह न रहे तो तमाम शरीरों की मौत हो जाय। इनमे से अन्नमय कोष , प्राणमय कोष स्थूल है क्योंकि मौत हो जाने पर इनकी भी मौत हो जाती है। मनोमय कोष ,

विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष सूक्ष्म हैं क्योंकि यह दिखाई नहीं देते और मरने पर आत्मा के साथ जाते हैं। कारण शरीर आत्मा का शरीर है जो सबका जौहर है।

कारण शरीर यानि आत्मा के शरीर का असली वतन दयाल देश है। जब तक यह अपने देश को नहीं पहुंचेगा इसको चैन और शांति नसीब न होगी। आत्मा दयाल देश यानि परमात्मा के चरणों से अलहदा हो कर काल देश (ब्रह्मांड) में से होती हुई पिंड देश में उतर आई। पिंड देश में यह दोनों आँखों के स्थान पर आकर ठहर गयी। इस स्थान को आगया चक्र भी कहते हैं क्योंकि इस जगह ठहर कर यह तमाम जिस्म का काम चलाती है और अपनी धरा के द्वारा शरीर का इंतजाम कायम रखती है। मन से मिलकर यह बाहरी जगत का अनुभव करती है, सुख दुःख उठाती है और जन्म मरण के चक्कर में घुमती रहती है। यह शरीर इन्द्रियों से नहीं दिखाई देती है और न इन्द्रियों द्वारा जाना जाता है।

सूक्ष्म शारीर यानि ख्यालात का शरीर (मन, Mind) है। यह यद्दपि दीखता नहीं है लेकिन इसके काम साफ़ दिखाई देते हैं। इसका असली देश काल देश है। वहाँ से हटकर यह नीचे कि तरफ उतरकर पिंड देश में हृदय चक्र में आकर ठहर गया है। आत्मा के साथ मिलकर यह बाहरी जगत का अनुभव करता है और सुख दुःख भोगता है। जब यह शांत हो जाता है आत्मा आज़ाद हो जाती है। इसका आकार अंगूठे के बराबर होती है। कभी कभी मरने पर शरीर छोड़ता हुआ अंतर की आँखों से दिखाई देता है।

स्थूल शरीर मरने के बाद नहीं रहता , और अपनी असल यानि मिटटी , पानी , हवा, आग और आकाश में मिल जाता है। आत्मा मन के साथ साथ फिर पैदा होता है यतो फिर स्थूल शारीर बना लेता है। जिसका जैसा ख्याल या सूक्ष्म शरीर होगा उसी के अनुरूप उसका स्थूल शरीर होगा। जब तक सूक्ष्म शरीर कायम रहेगा स्थूल शरीर भी मरता और पैदा होता रहेगा और जब सूक्ष्म शरीर मरकर शांत हो जायेगा यह स्थूल शरीर भी नहीं बनेगा। आत्मा आज़ाद है। वह हमेशा पवित्र

और शुद्ध है। इस पर इच्छाओं के पर्दे आ जाते हैं। यह पर्दे आत्मा को कैद कर लेते हैं और मरने के बाद यह शरीर आत्मा को अपने अंदर ढंकी इच्छाओं के अनुसार जगत में रहता है। कुछ काल बाद इच्छाओं के अनुरूप ही चोला धारण कर लेता है। बंधन जो कुछ है वह इस सूक्ष्म शरीर यानि मन के शरीर (Mind) की वजह से है। अगर यह ख़त्म हो जाय और न रहे तो आत्मा भी कैद न रहकर आज़ाद हो जाय और स्थूल शरीर भी न बने। यही मोक्ष है। तमाम कर्म पूजा पाठ उपासना भक्ति गरजे कि जो कुछ किया जाता है इसी मन के फंदे से छूटने के लिए किया जाता है। इसका समझना बहुत मुश्किल है और इसको समझ कर इसको काबू में लाना और भी ज्यादा मुश्किल है। सभी इसके चक्कर में हैं। कोई बिरला ही, जिस पर ईश्वर की कृपा होती है , इसके जाल से बाख सकता है। इसके लाखों ही नाम है, इसके लाखों ही रूप है। मुसलमान सूफी इसको नफ्स कहते हैं। यह शैतान की औलाद है। यह खुद ही सवाल करता है और खुद ही जवाब देता है। खुद ही फंसता है और खुद आज़ाद होता है। कहा है :--

मन के मते न चालिए , मन के मते अनेक।

जो मन पर असवार है , सो साधू कोई एक ॥

सब जगह इसी का पसारा है। जब तक यह है तभी तक दुनिया है और ईश्वर है। जब यह नहीं रहता , तमाम सृष्टि खत्म हो जाती है। इसको समझना और समझाना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन (असम्भव) है। इसके लाखों रूप है बल्कि जो तमाम दुनियां तुम देखते हो और अनुमान कर सकते हो सब इसी का तो रूप है।

इसके लाखों रूपों को पांच हालतों में बांटा जा सकता है। पहली हालत में वह पडा हुआ सोया रहता है , जैसे पत्थर। दूसरी अवस्था में कुछ सोया हुआ, कुछ जगता सा , जैसे वनस्पति और जानवर। तीसरी अवस्था में जगा हुआ जैसे मनुष्य। चौथी अवस्था में देवता (या फ़रिश्ता) कि हैसियत बन जाता है। पहले इसका स्थान देवलोक या काल्देश होता है। यह काल देश से आत्मा के

साथ आता है और पिंड शारीर में हृदय चक्र पर आ कर ठहरता है। वहां से आत्मा के साथ मिलकर दुनियां का व्यवहार करता है। काल देश में आत्मा उपर और मन नीचे रहता है। पिंड देश में आकर आत्मा नीचे और मन उपर आ जाता है और आत्मा उसके साथ मिलके दुनियां का व्यवहार करती है , सुख दुःख उठाती है। यह आत्मा विष्ठा के पास ले जाता है। यद्द्य्पी मन बेजान है लेकिन आत्मा से शक्ति लेकर खुद शक्तिशाली हो जाता है। इसके वश में आकर आत्मा दुनियां में फंसी रहती है और अपना असली वतन , जो दयाल देश है और जहाँ पर हमेशा का आनन्द हमेशा का ज्ञान और जिंदगी है भूल जाती है।। शुरू अवस्था में वह सोयी हुई होती है। जब वह जाग्रत अवस्था में आती है तब वह अपना वतन (स्वदेश) तलाश करती है । उस आनन्द और ज्ञान की जिन्दगी के लिए टक्करें खाती रहती है और आजा नहीं हो पाती। जब पूरी तरह जागृत हो जाती है तब उसे अपना असली ज्ञान हो जाता है और फिर मन के फंदे से आज़ाद हो जाती है , दुनियां में नहीं फंसती। जब तक वह इस हालत पर नहीं पहुँचती तब तक उसे किसी ऐसी आत्मा कई मदद लेनी होती है जो आज़ाद (मुक्त) है। जो स्वयम आज़ाद (मुक्त)है वही दुसरे को आज़ाद करा सकता है। जो खुद फंसा हुआ है न वह खुद आज़ाद हो सकता है न दुसरे को आज़ाद करा सकता है। जो साधन इस गाँठ को खोलने में मदद दे वही असली साधन है और वही असली धर्म या मजहब है। जो गुरु इस गाँठ को खोल दे वही असली गुरु है और सब धोखा है। अपना पुशार्थ और और कोशिश और गुरु का बताया हुआ तरीका मन को हल्का करता है जो मन को दंबाए हुए है। गुरु कि सोहबत आत्मा को शक्ति देती है जो दबी हुई है। अहिस्ता अहिस्ता कुछ दिनों के बाद देवासुर संग्राम या संघर्ष जारी हो जाता है और अगर गुरु का सत्संग मिलता रहा और अभ्यास जारी रहा तो आत्मा उपर आ जाता है। आत्मा को अपने घर का असली रास्ता मालूम हो जाता है। वह उलट पड़ती है। दुनियां के भोगो से पहले नफरत फिर उपरति हो जाती है। वह बजाय कर्ता के द्रष्टा बन जाती है। आगे के लिए संस्कार बनने बंद हो जाते है। पिछले संस्कारों को भोग कर अपने असली वतन दयाल

देश (सतलोक) को वापिस हो जाती हैं और हमेशा हमशा का सुख भोगती हैं। मन सुरत की शक्ति न पा कर सांसारिक भोग विलासों से विमुख हो जाता हैं। उसको भी अपने वतन काल्देश की याद आती हैं और उन सांसारिक झूठे सुखों से उसे उपरति हो जाती हैं जिनमे अब तक आनन्द लेता था। आत्मा के साथ वापिस अपने कालदेश को लौट पड़ता हैं और कालदेश में स्थित हो जाता हैं। आत्मा आज़ाद होकर अपने वतन दयाल देश (सतलोक) में जा समाती हैं।

मन ही असली बंधन का कारण हैं। जो साधन इस बंधन को ढीला करे वही असली साधन हैं अन्यथा समय का नष्ट करना हैं। अगर दुनियां छोडकर मन का बंधन ढीला न हुआ तो ज्यादा जिल्लत (नीचता) सवारी (बुराई) और बंधन हैं। और अगर दुनियां में रहते हुए यह बंधन ढीला हो गया तो फिर छोड़ने की क्या जरुरत ? और फिर दुनियां छोडकर मनुष्य जा कहाँ सकता हैं ? कहीं रिश्तेदार हैं तो कहीं शिष्य , कहीं घर हैं तो कहीं झोपडी , कहीं नदी हैं तो कहीं तालाब , कहीं जंगल हैं तो कहीं बाग़ बगीचे । । सारांश यह हैं कि जगह के ख्याल को छोडकर मन की दुरुश्ती करनी चाहिए , लेकिन अहिस्ता अहिस्ता। सख्ती से यह बिगड़ जाएगा और सिर पर चढ़ जाएगा। यह तो बिगड़ा हुआ बच्चा हैं। इसको गुरु कि मोहब्बत अहिस्ता अहिस्ता पुचकारकर ठीक करती हैं।

अगर मन किसी डर से जिद्द (हठ) छोड़ देता हैं (चाहे वह लालच के कारण , चाहे किसी वस्तु के न मिलने से) तो वह छोड़ना नहीं हैं। असल छोड़ना वह हैं कि चीज मौजूद हैं और ताकत इस्तेमाल भी हैं और कोई डर भी नहीं हैं लेकिन अब उस चीज को तबियत नहीं चाहती। किसी वक्त कंकडों से खेलते थे , रेट के घरोंदे बनाते थे और बड़े खुश रहते थे । अब बड़े बड़े आलिशान मकानों में रहते हैं , नई नई चीजों से खेलते हैं और कंकडों से खेलना बंद कर दिया हैं। इस तरह सब दुनियां कि चीजें भोग लेने के बाद उपरति उपरति हो जाय और अलहदा हो जाय तब आत्मा अपने असली रूप में प्रकट होती हैं। परमात्मा का प्रेम जग उठता हैं। जब तक दुनियां की किसी चीज का प्रेम या नफरत बाकि हैं परमात्मा का सच्चा प्रेम पैदा नहीं होता। जब परमात्मा का प्रेम

जग उठता है तो वह खुश होकर अपनी छाती से लगा लेता है और दोनों मिलकर एक रूप हो जाते हैं।

मन अहिस्ता अहिस्ता फेरो। ज्यादती करने से कई तरह के नुक्सान हैं जो कभी आगे बताये जायेंगे।

आत्मा का जागना

(प्रवचन गुरुदेव – फरवरी , १९६२)

आत्मा उस आदि शक्ति से निकलकर – जिसकी वह किरण है – ब्रह्मांड में उतरी , किन्तु वहन पर उसके उपर अंतःकरण (मन + बुद्धि + चित्त + अहंकार) यानि सूक्ष्म माया का पर्दा चढ़ गया। जब वहां भी अपने संस्कारों कि वजह से अचेत रही तो इस पिंड देश (मनुष्य शरीर) में उतारी गयी जो कि मलिन माया का रूप है और जहाँ इन्द्रिय भोग का रस मिलता है। यह इसलिए किया गया जिससे अचेत आत्मा चेत अवस्था में आ जाय। जैसे बच्चा सोया हो और उसे अच्छा गाना बजाना सुनाया जाय तो वह संगीत के प्रभाव से जाग जायेगा। आत्मा यहाँ आ कर अपने पिछले संस्कारों के वश चेत अवस्था में तो आयी लेकिन इन्द्रिय भोग में फंस गयी , यानि अपने असली देश (दयाल देश) को भूल कर इस पिंड देश को अपना देश और यहाँ के भोग विलास को अपना ध्येय समझ बैठी। जब तक उपर के पर्दे न हटें उसको अपने असली देश का ध्यान नही आ सकता और न अपने असल को ही समझ सकती है।

मनुष्य योनी बुद्धि की वजह से ही साड़ी योनियों में श्रेष्ठ मणि जाती है। वह आत्मा की असली साथी झी और इस दुनियां को मलिन माया में फंस गयी , इसी को अपना लिया है और जो कुछ वह सोचती है अपने मुनाफे (स्वार्थ) के लिए सोचती है। अतः बजाय छुटकारा पाने के वह (आत्मा) दुनियां में फंसती जाती है और दुःख पर दुःख उठाती है। सुख भी मिलता है पर वह थोड़ी देर को मिलता है।

अब यदि आत्मा इस तरह फंसती ही रहे या फंसी पड़ी रहे तो उसे कभी भी अपने असली वतन (निज देश) कि याद न आये और कभी भी दुखों से छुटकारा न हो। जीवात्मा की हालत उस मेढक कि सी हो जाती है जो खुद सांप के मुंह में हो। लेकिन अपने बचने की फ़िक्र न करके

मक्खी और मच्छरों को खाने में लगा हो। परमात्मा के प्रेम से यह दुनियां पैदा हुई है। कि जैसा मैं सदा सदा आनन्दित हूँ , खुश हूँ , वैसे ही मेरे जैसे अनेक हो जावें – (बहु स्यां प्रजायेय – छां. ६.२.३ ; त. २.६..) । जब जिव दुनियां में इस तरह फंसता है तो उसे परमात्मा की दया और मुहब्बत की लहर जोश में आती है और तब संत ऋषि, औलिया , पैगम्बर , अवतार आदि का जन्म होता है जो उस जीवात्मा को आनन्द कि ओर' ले जाना चाहते है और उसके हित कि बात बताते है लेकिन उनकी सुनता कौन है।

जब तक जीव दुनियां की झूठी मुहब्बत में फंसा है (जो थोड़ी देर का सुख दे कर उम्र भर को रुलाती है और आवागमन में फंसाती है) नही छूटता तब तक उसको इसकी असारता का ज्ञान नहीं होता और अपने हित की बात नहीं सुनता । जीव का मोह यहाँ की तकलीफों , दुनियां की बेवफाई और यहाँ की क्षण भंगुर हालत को देख कर और बार बार तकलीफों पर तकलीफें उठाकर कम होने लगता है। यही काल का कर्जा देना होता है। जब अपने संस्कार भुगतते भुगतते तकलीफें उठा उठा कर उसे यह तजुर्बा हो जाता है कि दुनियां दुखों का घर है और यहाँ पर असली सुख मिलना मुश्किल ही नहीं बल्कि नामुमकिन (असंभव) है तभी वह संतों की सोहबत (सत्संगति) कबूल करता है। यह पहला सबक (पाठ) है। शुरू शुरू में तो साधक (जीव , शिष्य) संत सद्गुरु की बात को (जो उसके हित के लिए है) नहीं सुनता क्योंकि अज्ञानता और खुदगर्जी (स्वार्थ) भरी रहती है। जो साधक बेचूंचरां (बिना तर्क वितर्क के) गुरु की बात को मानता है वही सच्चा गुरु भक्त है।

गुरु बड़ी खुशकिस्मती (सौभाग्य) से मिलता है । अगर सौभाग्य से मिल जाय तो उसके सत्संग से पूरा फायदा उठाना चाहिए। गुरु की जिन्दगी में ही आत्म साक्षात्कार कर लेना चाहिए। बगैर गुरु के आम तौर पर आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता।

मोक्ष कभी पिछले संस्कारों से नहीं मिलती। वह तप करने से ही प्राप्त होती है। लिहाज़ा उसके लिए तप की बड़ी जरूरत होती है। अपने मन की चाल पर ख्याल रखना , उसको बराबर संवारते रहना तप है। तम से रज, रज से सत, सत से आत्मा में मिला देना (यानि ईश्वर कि याद में मिला देना) यही असली तप है मोक्ष को हासिल (प्राप्त) करने के लिए कोई मियाद (अवधि) नहीं है। यह एक जन्म में भी हासिल हो सकती है और सैंकड़ो जन्मों में भी नहीं प्राप्त हो सकती।

तकलीफें बेहतरी (कल्याण) के लिए आती है। ईश्वर को जिसका उद्धार मंजूर होता है उस पर शुरू शुरू में तकलीफें आती है। इससे आतमा का मैल धुलता है। तकलीफों से पुराने संस्कारों कफ्फारा यानि बदल हो जाता है।) आत्मा को दूसरा सबक (पाठ) तकलीफों से मिलता है। तकलीफों का स्वागत करना चाहिए। साबुन कि सबक से मैल छूटता है , चादर निर्मल हो जाती है। तकलीफें हमारे खुदा का (प्रभु) का (invitation) (निमन्त्रण) है, जुबां (जिह्वा) पर शिकायत का लफ्ज़ (शब्द) भी नहीं आना चाहिए। मजबूरी से भोगना भी कोई भोगना है ? मजबूरी का भोग कुछ नहीं – उसे ख़ुशी से भोगना चाहिए और अपने प्रीतम का तोहफा (उपहार) समझना चाहिए। उसमे वही आनन्द लेना चाहिए जो आनन्द अपने दुनियावी सुख केलिए लेते है। क्या हमारा प्रीतम प्रभु दुनियावी माशूक से भी गिरा हुआ है ? उसके रस्ते में जो भी तकलीफें आयें उन्हें ख़ुशी से भोगना चाहिए।

तप साधन अभ्यास के बाद जो ज्ञान होता है वही असली ज्ञान है वही ईश्वर के तरफ ले जाता है। इससे पहले का ज्ञान (बिना अभ्यास किये हुए का) धोखा है जो दुनियां में फंसाता है। बुद्धि के शुद्ध होने पर साधक शिष्य गुरु से तालीम (शिक्षा) पाने के लायक (योग्य) हो पाता है। यहीं पर असली श्रद्धा आती है। इससे पहले कि श्रद्धा धोखा है। (अब साधक संत सद्गुरु कि बात को चित्त देकर सुनता है, उनके बताये हुए मार्ग पर चलता है, साधनों को अपनाता है अभ्यास

करता है और तब गुरु-कृपा तथा उनके सत्संग के असर से मलिन माया का पर्दा साफ़ होता जाता है। बुद्धि शुद्ध होकर असलियत खुलने लगती है , सत असत में तमीज होने लगती है।) नाशवान चीजों कि तरफ से तबियत हटने लगती है और ईश्वर कि तरफ तबियत का रुझान (झुकाव) बढ़ता जाता है। अपने उद्धार कि इच्छा पैदा होती है। यही आत्मा का जगाना है। इस जागरण से अहिस्ता अहिस्ता जितना अभ्यास बढ़ता जाता है, ज्ञान कि उत्पत्ति होती है , असलियत खुलती है और अपने प्रीतम परमात्मा से मिलने की तलब (जिज्ञासा) बढती जाती है। यह समय गुरु कि ओर से दीक्षा देने और शिष्य को दीक्षा लेने का है। इस समय गुरु की सच्ची श्रद्धा होती है। यह तीसरा सबक (पाठ) है जो जीव को संत सद्गुरु से मिलता है। इस अवस्था में वह उम्मीदवार (जिज्ञासु) से मकबूल (अपनाया हुआ one who is accepted) हो जाता है। इससे पहले उम्मीदवार (प्रत्याशी) कि हालत थी। अब साधक उस संगत को अपना लेता है। इस हालत पर आकर शिष्य अपनी खुदी (अहंकार , अनानिय्त , ego) का पर्दा , जो ब्त्दारिज (क्रमशः) साफ़ होता आ रहा था अनानियते आला (शुद्ध सतोगुणी अहंकार) में बदला हुआ पाता है। संत सद्गुरु अपने प्रेम के रंग में रंग कर साधक शिष्य के अंतःकरण के पर्दे हटा कर अपने प्रीतम के प्रेम के रंग में रंगकर ईश्वर के सामे पेश कर देता है और दोनों का मेल करा देता है। यही असली विवाह (आत्मा का परमात्मा के साथ) है, यही असली पति पत्नी का मेल है जो हमेशा कायम रहता है और जिसमे कभी वियोग नहीं होता।

अब गुरु पिता तुली होकर शिष्य की देखभाल करते है यानि पीठ पीछे रहते हैं जिसे सूफियों में पुश्तेपना ही कहते है। परमात्मा का प्रेम मिलने पर जो कुछ भी बुराई अंतःकरण की बाकी ठी वह साफ़ हो जाती है। आत्मा पूरी तरह प्रकाशित हो जाती है।

ईश्वर प्राप्ति के दो ही रस्ते हैं, एक प्रेम और दूसरी दीनता। जिस साधन या अभ्यास से यह दोनों पैदा न हो वह रास्ता गलत है।

अभ्यास में उन्नति न होने के कारण

(सिकंदराबाद – ता० २३-१०-६४)

कुछ अभ्यासी शिकायत करते हैं कि हमको इतने दिन सत्संग में आते हुए हो गये, बराबर अभ्यास भी कर रहे हैं लेकिन हमको फायदा नहीं होता।

यह दुनियां इल्लत और मालुम की है। जो काम यहाँ किया जाता है उसका जरुर नतीजा मिलता है और जिस चीज का नतीजा हम भोगते हैं उसका भी कारण कुछ न कुछ जरुर होगा। कोई ऐसा कर्म नहीं है जिसका सबब न हो। और जब ऐसा है तो फिर कैसे मुमकिन हो कि हमको कोई फायदा न हो।

अगर हम गौर करें तो इसके दो कारण मालूम होते हैं। पहला कारण यह है कि हमारी चढ़ाई या अभ्यास हमारे कर्मों के मुकाबले में बहुत कम है इसलिए फायदा मालूम नहीं होता – जैसे , किसी आदमी को १०० मील का सफर तय करना है और वह सिर्फ एक फलांग ही चला हो तो उसको यह मालूम होता है कि अभी कुछ नहीं चला है। हमारी आत्मा पर ख्वाहिशात (इच्छाओं) और वासनाओं कि ढेर की ढेर परतें पड़ी हुई हैं और आत्मा उनसे दबी हुई है। इस थोड़े दिन के अभ्यास से , जो तमाम दिन भर में घंटे आधे घंटे होता है और वह भी ठीक तौर पर नहीं हो पाता , बाकि समय दुनियां के धंधों में गुजरता है और ख्वाहिशात की ढेर की ढेर परत और चढ़ जाते हैं। तो उस थोड़े से अभ्यास से कैसे आत्मा मन से न्यारी हो सकती है और फायदा कैसे महसूस हो सकता है ?

दुसरे इसका सबब यह मालूम पड़ता है कि अगरचे (यद्द्यपी) हम अभ्यास ईश्वर के पाने के लिए करते हैं लेकिन दरअसल अपने आपको धोखा देते हैं। दुनियाँ में तकरीबन (लगभग)

सभी के सभी आदमी दुखी हैं और ईश्वर से उस दुःख की निवृत्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। लेकिन क्या दरअसल वे ईस्वर से उसके प्रेम के लिए दुआ करते हैं। अगर उनको वह चीज जिसके लिए वे दुखी हैं मिल जाए तो फिर वे सुखी हो जाते हैं और उस चीज से प्रेम करने लगते हैं। इससे साफ़ जाहिर होता है कि वे ईश्वर को प्यार नहीं करते बलिक उस चीज को प्यार करते हैं और ईश्वर की प्रार्थना इसलिए करते हैं कि वह चीज उनको मिल जाए और उस चीज के मिल जाने के बाद उनकी आत्मा उस चीज में और तेजी से फंस जाती है। वे दुनियां में पहले कि बनिस्पत और ज्यादा फंस जाते हैं। इससे उनको बजाय फायदे के उल्टा और नुकसान होता है। (ईश्वर को पूजने वाला वास्तव में वह है जो दुनियाँ की कोई चीज नहीं चाहता , सिवाय उसके प्यार के , और दुनियाँ की सब चीजें होते हुए भी बगैर उसके प्यार के दुखी हैं।)

परमात्मा कि कृपा हर एक वस्तु और हर एक जीव पर हर समय हो रही होई , और एक सी हो रही है। फर्क सिर्फ महसूस और गैर महसूस का है। जिसने अपने बर्तन यानि मन को साफ़ कर लिया है और कोई अपवित्रता उसमे नहीं है , उस पर उसका असर ज्यादा है। और जिसके अंदर मैल भरा हुआ है और उसके कारण फैज़ को कबूल नहीं करता उस पर उसका असर या तो बिलकुल नहीं है या कम है। सूरज कि रौशनी सब पर एक सी पड़ती है और वह सबकी जान है। लेकिन उसका असर सब पर अलग अलग है। अगर चिमगादड़ को सूरज की रोशनी में नहीं दिखाई नही देता तो उसमे चिमगादड़ की आँख का दोष है या सूरज का ? इसी तरह अगर एक आग का ढेर है और उसके चारों ओर भिन्न भिन्न चीजें रखी हुई है तो अगरचे (यद्यपि) आग की तेजी सब पर एक सी पड़ती है लेकिन चीजों पर अलग अलग असर होता है। जितनी जो चीजें साफ़ है वही उतनी ज्यादा आग का असर कबूल करती है और जो चीजें जितनी ज्यादा (non conductor) अपरिचाल्क है, वे उतनी ही कम महसूस करती है। सतगुरु या परमात्मा का फैज़ हर वक्त हर एक

पर एक सा पड़ रहा हैं , कोई उसे महसूस करता हैं और कोई नहीं। यह उसकी ग्रहण करने की शक्ति पर निर्भर हैं यानि अधिकार पर।

जिसने जितना अपने दिल को दुनियां की वासनाओं से साफ़ कर लिया हैं और परमात्मा कर प्रेम का उत्सुक हैं उतना ही उसको ज्यादा फायदा महसूस होता हैं। लिहाजा अभ्यासी को हमेशा हर समय अपनी वासनाओं पर ख्याल रखना चाहिए। जितना वह खुदगर्जी स्वार्थ को छोड़कर दूसरों की भलाई के लिए कोशिश करेगा उतना ही सद्गुरु या परमात्मा के प्रेम का अधिकारी होगा और उतना ही उसका परमार्थ बनता चलेगा।

भक्ति

(दिल्ली – ता० २६-१०-६४)

दुनियां को गौर से देखने से मालूम पड़ता है कि सब चीज आकाश में खड़ी और एक दुसरे को खींच रही है और उसके (आकर्षण) सहारे कायम है। सब एक दुसरे के चारो ओर घूम रहे है,क्योंकि सूरज पृथ्वी को खैंच रहा है और पृथ्वी सूरज को। इसी प्रकार सब लोक लोकान्तर सूरज के चारो ओर घूम रहे है , बाहम एक दुसरे को कशिश के जोर से। सूरज अपने तमाम ब्रह्मांड के साथ अपने दुसरे सूरज के चारो ओर घूम रहा है और इसी तरह से हर चीज घूम रही है किसी की कशिश की वजह से। दुनियाँ की हर चीज का एक एक जर्रा (कण) आपस में एक दुसरे को खींच रहा है तभी उस चीज कि यह शक्ल कायम है। एक खंडन का आदमी तमाम दिन मेहनत करता है और तमाम खानदान की परवरिश करता है , क्यों ? सिर्फ इसी कशिश की वजह से। एक कौम के लोग आपस में मिलजुल कर एक दुसरे की मद करते हुए खुशी से रहते है। गरज कि दुनीया की हर चीज देखने से यह पता लगता है कि हर चीज मौजूदा शक्ल में इसी कशिश की वजह से कायम है। और सब असल के चारों ओर गम रहे है और वह असल सिर्फ ठहरा हुआ है – उसी का नाम ईश्वर , GOD या अल्लाह है। अगर किसी वजह से यहं कशिश अलहदा हो जाए तो दुनियाँ की कोई चीज कायम नहीं रह सकती , सब टूट फुट कर बिखर जायेगी। सब चीजों की जान यह कशिश है।

जिन चीजों को हम बेजान कहते है उनमें कशिश का नाम (Attraction) आकर्षण है। इंसान में इसी का नाम भक्ति या प्रेम है। इसी वास्ते कहा गया है कि (God is love and love is God ईश्वर प्रेम है और प्रेम ईश्वर है) । अपनी असल की तरफ खिंचना एक कुदरती उसूल (natural phenomena) है। लेकिन अगर कोई चीज बीच में आ जाती है तो कशिश काम नहीं

करती हैं। इसी का नाम दुःख , तकलीफ, अलहदगी (दुरी) और गुनाह (पाप) हैं जिस तरकीब से उस बीच की चीज को अलहदा कर दिया जाए उसी का नाम सवाब (पुण्य) , सुख, रियाज़त , (अभ्यास) बन्दगी (पूजा) और तप हैं। जिव ईश्वर का अंश हैं। उन दोनों में आपस में कुदरती खिंचावट और प्रेम हैं और इसी का नाम सुख और शांति हैं। अगर कोई चीज बीच में आ जाती हैं तो उसमे जुदाई (वियोग) परेशानी और अशांति पैदा हो जाती हैं। जिन तरीकों से इस बीच की चीज को हटाया जाए (ताकि वह खिंचावट अंश और अंशी में फिर पैदा हो जाए) तप और रियाज़त कहलाते हैं। जो मजहब , जो तरीका इस कशिश को – जो कुदरती हैं – दुबारा जारी कर सके और रुकावट को दूर कर सके , असली मजहब हैं और जो व्यक्ति उन तरीकों को समझ कर, अभ्यास कराकर बीच बीच की चीज दूर करके जीव और ईश्वर में वह कुदरती सम्बन्ध जो आरज़ी (अस्थायी) तौर पर गैर चीज के बीच में आ जाने से अलहदा हो गया था, दुबार जारी करा दे, वही सच्चा गुरु हैं। इसलिए सच्चे सुख के खोजियों को यह इलाज़ जरुरी हैं कि ऐसे व्यक्ति की तलाश करे जो उसको अपने असल से मिला दे , तभी सच्ची ख़ुशी हासिल हो सकती हैं। इसके अलावा दूसरी तरकीब नहीं हैं।

इच्छाओं तथा वासनाओं से उपरति, सद्गुरु की कृपा और अभ्यास मनुष्य को परम लक्ष्य तक पहुंचा देते हैं

सिकंदराबाद (यू० पी०) ता० १२-१२-६४ ई०

संतमत persuation (फुसलाने) का मत नहीं है। अगर कोई कहने से नहीं मानता और इसमें शामिल नहीं होना चाहता तो उस पर दबाव नहीं डालना चाहिए। जैसे किसी की धर्म पत्नी का या लड़के का इस तरफ रागिब (लग्न) नहीं है तो उसको जबरदस्ती इस तरफ नहीं लाना चाहिए। अगर मुनासिब समझे तो उसको समझा दे कि उसकी भलाई किस में है। संतमत के उसूल (सिद्धांत) और फायदे उसको समझा दें। अपने card (कार्ड) खोल कर उसके सामने रख दे मान जाए तो बहुत अच्छा और अगर न माने तो उसे अपने रास्ते पर चलने दे। परमपिता परमात्मा जो सबका भला चाहता है, उसे किसी न किसी दिन जरुर सद्बुद्धि देगा। हमे तो बीएस उसके लिए दुआ करनी चाहिए कि "हे प्रभु। इसका भला कर।"

दुनियाँ में रहते हुए सब तरह कि ख्वाहिशें इंसान में मौजूद है। यह दो तरह काटी जा सकती है। एक तो ज्ञान से मन को समझा समझा कर उसको ख्वाहिशों से अलग हटाना। अगर जरुरत पड़े तो कभी कभी जबरदस्ती भी करनी पड़ती है जिससे कि वे हमेशा के लिए दब जाए मगर अगर वे हमेशा के लिए नहीं दबायी जा सकती तो दूसरा तरीका उनके काटने का यह है कि उन्हें भोग कर उपराम हो जाए। कई दफा धोखा हो जाता है। ख्वाहिशें दरअसल मे बाज़ी बाज़ी आरजी (अस्थायी) तौर पर दब जाती है यानि मन उस चीज कि याद तो करता है मगर उपर उपर में ज्ञान और विवेक की बातों से उसे काटता रहता है। यह कच्चापन है। दबा देना वह है जो फिर याद ही न आये या उधर ख्याल ही न जाए। याद आने की सुरत में जब तक इच्छा शक्ति (will power) मजबूत है, वह दबी रहेगी। मगर जहाँ इच्छाशक्ति जरा भी कमजोर हुई कि ख्वाहिश उभर आएगी

और इंसान को धृ दबाएगी। ऐसी ख्वाहिशों को भोगकर उनसे उपरामता हासिल कर लेनी चाहिए। उपराम होना वह है कि किसी चीज को भोगकर उससे तबियत इतनी भर जाए कि मन उधर न जाए और उसमे उसको रस न आये।

वास्तव में अगर कोई समर्थ गुरु भाग्य से मिल जाए और उनकी कृपा से अनुभव हो जाए या निस्बत (गुरु शिष्य का आंतरिक सम्बन्ध) कायम हो जाए तो इंसान की कितनी भी ख्वाहिशें हों , आसानी से कट जाती है। अगर उनको भोगता भी है तो उनमे फंसता नहीं। जो रस उसे शुरू में उस ख्वाहिश को भोगने में आता है वह फीका पड़ जाता है और उसकी तबियत भर जाती है। हाई स्कुल करने के बाद हमारी ख्वाहिश ठी कि commerce (वाणिज्य) पास करके कहीं क्लर्क बन जाए। क्लर्की भी की लेकिन तबियत नही लगी , आमदनी बहुत थोड़ी थी। मेरी धर्म पत्नी कहती थी कि बच्चे कि परवरिश (पालन पोषण) कैसे होंगे। हमारे चाचा जि (मेर्फे पूज्य गुरुदेव के छोटे भी मुंशी रघुबर दयाल जि) उम्र भर बहुत थोड़े ही में गुजारा करते। उन्होंने बहुत सा पैसा कमाकर दुनियां भर की ख्वाहिशॉन को पूरा करने की तरफ कभी तवज्जह नहीं की। वे जिंदगी भर जनाब लाला जि साहब (पूज्य गुरुदेव) मौजूद रहे उनकी सेवा में लगे रहे। मैंने पूछा कि मैं आगे पढ़ना चाहता हूँ। उन्होंने इसको encourage (प्रोत्साहित) नहीं किया। वे तो हमेशा सेवा भाव में रत थे इसलिए उन्होंने वैसा ही समझाया। मेरी तसल्ली नहीं हुई। गुरुदेव से अर्ज़ (निवेदन) किया और अपनी ख्वाहिश (इच्छा) जाहिर की। उन्होंने कहा कि अगर तुम्हारी ऐसी ही ख्वाहिश (इच्छा) है तो जरुर पढो। एफ़० ए० पास करो और डाक्टरी पढो। चुनाचे (अतः) वैसा ही किया। पढाई की ख्वाहिश पूरी की , खेल कूदों में हिस्सा लिया, डाक्टरी की , राजनीती में भी भाग लिया, कोंग्रेस में भी काम किया। बड़े बड़ों की सोहबतें भी उठायी, चुनाव लड़े, स्कूलों की मनेजरी भी की। गरजे कि इस तरह की ख्वाहिशें पूरी की, लेकिन किसी में फंसे नहीं कोई दिलचस्पी किसी चीज से

नहीं हुई। गुरुदेव की कृपा ठी , उन्होंने अपनी मेहरबानी से शुरू में ही अनुभव करा दिया था, गोया मनो सब रस्ते बंद कर दिए थे। जहाज के कौंए जैसी हालत ठी , जाएँ कहाँ ?

गुरु का तो बड़ा भारी सहारा होता है । अगर दरअसल हमे उनसे सच्चा प्रेम है तो जहाँ कहीं फंसेंगे वही से वे निकल लेंगे। अगर किसी ख्वाहिश को आप दबा नही सकते है तो गुरु का सहारा लेकर धर्म शास्त्र के मुताबिक (अनुसार) उसको भोगो – लेकिन सही और गलत का ध्यान रहे धर्म का सहारा न छुट जाए। अपने सगे सम्बन्धियों के साथ मिलकर चलो। किसी को मजबूर कर के अपनी राह न चलाओ। अगर उसकी ख्वाहिश रुपए कि है तो उसे भोग लेने दो। ईश्वर का साथ लो और आगे बढ़ते रहो। ख्वाहिशें तो आएँगी ही क्योंकि वह मनुष्य जन्म में ही भोगी जा सकती है । लेकिन वही उसूल याद रहे कि जो ज्ञान से दबाई जा सके और जो नहीं दब सकती हो उन्हें धर्म शास्त्र के अनुसार भोग कर उपरामता हासिल कर लो। फंसो मत। जहाँ फंसावट देखो प्रार्थना करो , सहारा मिलेगा तभी तृप्ति मिलेगी।

एक सज्जन शाहजहांपुर में हैं , पहले कहीं क्लर्क थे। उन्होंने नौकरी छोडकर किन्ही स्वामी जी के पास जा कर सन्यास ले लिया। स्वामी जी ने उन्हें ईट ढोने पर लगा दिया। उन्होंने जब स्वामी जी के ठाट बाट देखे तो उन्हें छोड़ बैठे खुद मठ बना लिया। अब गुरु बन गये है। चेले खिदमत (सेवा) को मौजूद हैं। छोड़ने चले थे दुनियां को, लेकिन उलटे फंस गये। इस तरह से छोड़ना क्या छोड़ना है ?

बीवी (पत्नी) बच्चों के साथ प्रेम का बर्ताव करो, लेकिन ईश्वर के वास्ते से , अपना समझ कर नहीं वरना उलझ जाओगे। अगर ईश्वर का समझ कर करोगे तो बंधन ढीलें होते जायेंगे। गोरखपुर में मैंने बनर्जी साहब से पूछा कि गृहस्थ धर्म अच्छा है कि सन्यास ? उन्होंने फरमाया – "गृहस्थ धर्म बड़ा कठिन है – एक से बढकर एक मुश्किलें उनके सामने आती हैं।"

यह सोचना कि हमारे ख्याल के सब हो जाए (बीवी, बच्चे, यार , दोस्त आदि) यह मोह का रूप हैं । उनके लिए दुआ कर दो । Let their desire fulfill in the right way , no propaganda. (उनकी इच्छाओं को शि रस्ते से पूरी होने दो – कोई प्रचार मत करो) । ईश्वर के हाथ ही सबका बनाना है। जब वक्त आएगा वह रास्ते पर ले आएगा।

संतों का परमार्थ

(गाज़ियाबाद ता० १०-१-६५)

संतमत के परमार्थ और दुसरे मतों के परमार्थ में फ़र्क (अंतर) हैं। और मतों में शुभ कर्म करना - जैसे दान सेना, गरीबों और दुखियों की सेवा करना , धर्मशाले , मन्दिर वगैरह बनवाना , तिर्थ्वर्ट करना यानि सत पर चलना – इसी को परमार्थ कहते हैं। यह मन का रूप हैं , अगरचे (यद्यपि) यह सतोगुणी मन का रूप हैं। मन के तीन रूप हैं – (१) तम (२) रज और (३) सत। तम में अच्छाई बुराई का ख्याल नहीं होता क्योंकि वह अवस्था मूढ़ता और अज्ञानता की हैं और इसमें सिवाय इन्द्रिय भोग , आलस्य और नीची वासनाओं कि पूर्ति करने के आगे कुछ नहीं। इसका स्थान नाभि में हैं इसको मुसलमान सूफी नफ्स अम्मारा कहते हैं। यह एक तरह की मशीन की सी हालत हैं जो अपने सब काम एक हद (सीमा) के अंदर बंधी हुई करती हैं। रज में अच्छाई बुराई दोनों का ख्याल अदल बदल कर आता हैं। यह आम मनुष्यों की हालत हैं जिनमे बुद्धि हैं और जो सोच विचार की शक्ति का इस्तेमाल करते हैं। सत में हमेशा अच्छाई और नेकी और ईश्वर भक्ति तथा शुभ कर्मों का ख्याल रहता हैं वैसे ही कर्म करता रहता हैं लेकिन अगर गौर से देखें तो यह पाएंगे कि जहाँ सत का ख्याल हैं वहां असत छुपी हुई शक्ल में मौजूद हैं। सत तस्वीर का सीधा पहलु हैं और असत उल्टा पहलु। मन इस तीसरे स्थान यानि सत पर आकर शांत हो जाता हैं।

लेकिन संतमत का परमार्थ इससे ऊँचा है। आत्मा जिससे सब इन्द्रियाँ और मन संचालित है , इसके प्रभाव से निकलकर न्यारी हो जाये और ईश्वर में – जिसकी वह अंश है – रत हो जाये।

'अव्वले माँ आखिरे हर मुन्तहीस्त आखिरे माँ जेब तमन्ना तिहीस्त' ।

(भावार्थ – मेरा आरम्भ तो यहाँ से होता है जहाँ औरों की समाप्ति है और मेरा समाप्त वहां है जहाँ इच्छाओं की जेब खाली हो जाती है।)

हमारे यहाँ (संतमत में) परमार्थ की शुरुआत वहां से होती है जहाँ दुसरे मत वाले खत्म करते हैं। यानि अन्य मतों में सत में बरतने को ही परमार्थ माना है , यह ब्रह्मांड ही उनका लक्ष्य है वही इनकी इन्तहां (समाप्त) है , लेकिन हमारे यहाँ इसी स्थान से परमार्थ का दरवाजा खुलता है। प्रीतम का घर तो अभी दूर है। हमारी मंजिल तो अभी शुरू होती है। ख़त्म हमारा वहां है जहाँ तमन्ना कीजेब खाली हो जाए यानि अपनी कोई ख्वाहिश बाकि न रहे अपनी हस्ती ही ईश्वर में लय हो जाए , सत असत का भी विचार न हो यहाँ तक कि यह भी ख्याल न रहे कि हमे ईश्वर कि प्राप्ति हो जाए और छोड़ने का ख्याल भी न रहे।

तर्के दुनियाँ, तर्के उकबा, तर्के मौला, तर्के ए तर्क।

(दुनियाँ के ख्याल को छोडो , स्वर्ग के ख्याल को छोडो , ईश्वर के ख्याल को छोडो, और छोड़ने के ख्याल को भी अंत में छोड़ दो, कुछ बाकि न रह जाए।) सम्पूर्णतयः परमपिता परमेश्वर में लय हो जाओ। फिर लय होने के ख्याल को भी छोड़ दो। सूफियों ने कहा है –

ई मबाश इस ला कमाल ई असतो बस ,

तू दरो गुम शो विसाल ई असतो बस।

(भावार्थ – तू हरगिज कुछ भी न रहे , यही कमाल है , पूर्णता है। तू बिलकुल उसमे गुम हो जाय , यही विसाल है, परमलय है।) (संतमत में मोक्ष कि भी इच्छा नहीं रखते। सूफियो में राज़ी ब रज़ा अपनाते है। जिस हालत में परमात्मा रखे उसी में खुश रहना, उसे सराहते रहना और उसकी याद से एक लम्हे (क्षण) के लिए खाली न रहना, राज़ी ब रज़ा की हालत कहलाती है।)

आत्मा अपने प्रीतम ईश्वर को प्यार करती है और उससे जा मिलना ही उसका परम ध्येय है। माया की लपेट में आ कर वह शैतान के इस झमेले में पड़ गयी जिसका नाम दुनियाँ है और बाहिर्मुखी हो गयी है , दुनियां और उसके नाशवान पदार्थों में सुख ढूंढती है और अपना असली रूप और असली वतन (स्वदेश) भूल चुकी है। लेकिन उसमे अपने प्रीतम को नहीं पति इसलिए दुखी होती है। जब हम दुनियां को प्यार करते है तो अपने प्रीतम से दूर है। चतुराई , बुद्धि, इन्द्री भोग – यह सब मन के रूप हैं। जब हम इनमे फंसते हैं , दुनियाँ को प्यार करने लगते है। इसका नशा अहंकार है। जो इन सबसे निकल जाता है वह यहाँ से छुट जाता है , द्वैत भाव उसपे कोई असर नहीं करते। उसके लिए जिल्लत (नीचता) नफ़रत (घृणा) कोई माने नहीं रखते।

इस रचना में जहाँ तक कोई चीज देखि जा सकती है या सोची जा सकती है यानि बुद्धि के दायरे (घेरे) में आती है , वहन तक सब काल देश का पसारा है , यानि सब नाशवान है। काल देश के परे जो देश है उसी को दयाल देश कहते है। वही सत-खण्ड और संतों का देश है। देवताओं को भी वहन पहुँच नहीं है क्योंकि उनकी भी आयु होती है , ये भी सृष्टि के साथ साथ बार बार बनते है । अब तक न मालूम कितने ही इंद्र देवता हो चुके है।

संतों का परमार्थ सबसे न्याश है। वह सत और असत से उपर है। सत में भी ख्वाहिश तो होती ही है यानि मन हमेशा नेक काम करने की गुनावन उठाया करता है और जब तक मन में इच्छाएं उठ रही है तब तक वह शांत नहीं है। वह भी एक बंधन है यद्यपि सोने की जंजीर है ।

बिना शांत हुए उसमे आत्मा का प्रकाश नहीं पड़ सकता। जब तक दरिया (नदी) का पानी शांत न हो और साथ ही साथ साफ़ भी न हो तब तक उसमे सूरज कि झलक नहीं दिखती , सतह का हीरा नहीं दिखाई देता। जब हीरा झलकने लगे तब गोता लगाओ और उसे उठा लो। वह मिल गया ती जीवन मरण से पर हो जाओगे। हमेशा हमेशा के लिए दुःख निवारण हो जायेगा।

दुनियां का यह मेरा तेरा , दुनियाँ कि ख्वाहिशात (इच्छाएँ) दूर करो , मन को साफ़ और शुद्ध करो , न किसी से द्वेष हो न किसी से लगाव। जब ऐसी हालत हो जायेगी तब सभी में उस परमात्मा का नूर (ज्योति)झलकने लगेगा।। जहाँ तक चरित्र निर्माण हैं यानि अपने इखलाक को दुरुस्त करना हैं। जहाँ तक तर्क वितर्क हैं बुद्धि से कोई चीज समझ सकते हैं , वहन परमात्मा नहीं हैं। इससे आगे जाने पर आत्म बोध होने लगता हैं। दूसरों का दुःख सुख ऐसा अनुभव होता हैं जैसे उसके अपने उपर बीत रही हो। स्वामी रामदास जि ने एक जगह कहा हैं कि एक गधा पर बोझ लदा हुआ था और वह चल नहीं पा रहा था। गधे का मालिक उसे डंडों से पीटता था , जिससे उसे बड़ा कष्ट होता था। जब गधे वाला गधे को डंडा मारता तो स्वामी जी को अपने उपर वह तकलीफ अनुभव होती थी। उन्होंने उस गधे वाले के पास जाकर कहा कि उसे न मारे क्योंकि इससे उन्हें तकलीफ होती हैं। लेकिन वह नहीं माना। आखिर वे स्वयं उस जगह से बहुत दूर चले गये। कहने k मतलब यह हैं कि सब प्राणियों में एक ही आत्मा व्याप्त हैं और आत्मा के स्थान पर जिसकी बैठक हैं वह सबके दुःख सुख समान अनुभव करता हैं।

(सांस खली जा रहा हैं, सुनहरा मौका खो रहे हो। क्या इसका अफ़सोस नहीं हैं ? मनुष्य जन, और संत मिलन बार बार नहीं होता। इस वक्त को गनीमत जानो और लग लिपट कर अपना काम बना लो।)

परमात्मा सब का भला करे।

अभ्यासियों के लिए नसीहतें – गुरु के प्रति श्रद्धा, प्रेम व दीनता

गाज़ियाबाद ता० १०-१-६९

शुरू शुरू में अभ्यासी से ईश्वर के निर्गुण रूप की उपासना नहीं हो सकती उसको सगुन रूप का ही ध्यान आरम्भ में करना चाहिए। संतमत में उसके तीन सगुन रूप हैं – (१) प्रकाश (२) शब्द और (३) गुरु। इनमे से जिसका ध्यान करने को बताया जाए उसे मजबूती से पकड़ो और अंतर में उसी के रूप के दर्शन का अभ्यास करो। self control यानि अपनी इन्द्रियों को अपने काबू में करो। इन्द्रिय निग्रह के लिए पहले के लोगो ने प्राणायाम वगैरह के तरीके इजाद अविष्कार किये थे। आज कल के लिहाज़ से वह नहीं हो सकता। न तो प्राणायाम के आजकल अच्छे जान्ने वाले हैं और न हरेक के बस का है। प्रणायाम के जरिये अपने Nervous system स्नायु मंडल पर तो काबू आ जाता है जैसे नब्ज रोक लेना , कई कई घंटे सांस लेना , पखाना पेशाब वगैरह के एज यंत्रों पर काबू आना लेकिन मन पर काबू नहीं आता – उलटे एक अहंकार पैदा हो जाता है कि मैंने इतने घंटे सांस रोका वगैरह वगैरह। एक सत्संगी भाई बनारस में हैं , उनके पिता जी से मिलने का इत्तिफाक (अवसर) हुआ। वृद्ध आयु के हैं लेकिन खूब हृष्ट पुष्ट हैं, चार चार घंटे का प्राणायाम खींचते हैं और बरसों से यह अभ्यास कर रहे हैं, लेकिन मन पर अभी तक काबू नहीं है। इसलिए आजकल के वक्त में संतमत के अभ्यासियों के लिए प्रणाम के जरिये इन्द्रियों पर काबू पाना वक्त का रायगा करना (वृथा खोना) है।

सबसे अव्वल और मुख्य बात मन पर काबू करना है। इंसान की खुद इतनी ताकत नही जो इस पर काबू पा सके। हवा को मुट्ठी में बाँध लेना आसान है लेकिन मन पर काबू करना उससे भी ज्यादा कठिन है। लेकिन यह कठिन काम भी आसान हो जाता है अगर गुरु के प्रेम का सहारा पकड़

लो , उनकी बताई हुई राह पर चलो और उनकी नसीहतों पर अमल करो तो एक न एक दिन इस जन्म में नहीं तो आयन्दा , मन पर काबू पा जाओगे।

सब चीजें एक साथ नहीं छुट सकती। जन्म जन्मान्तर से जो ख्वाहिशें (इच्छाएं) दबी पड़ी हैं वे मनुष्य जन्म में ही पूरी होती हैं। एक ख्वाहिश के पूरा करने में अनेक नई ख्वाहिशें और पैदा हो जाती हैं और इस तरह से बजाय कम होने के बोझ और बढ़ जाता हैं। सब ख्वाहिशें एक साथ नहीं छोड़ी जा सकती। पहले छोटी छोटी चीजों को छोडो। अगर एक जोड़ी जुटे से काम चल सकता हैं तो ज्यादा कि क्या जरूरत हैं। इस तरह मन को समझाकर और गुरु प्रेम का सहारा लेकर उसे दुनियां कि चीजो से हटाओ। जब वह दुनियां से हटने लगेगा , उसकी चाल गुरु कृपा द्वारा अंतर में चलने लगेगी।

किताबों में पढने से कभी कभी भ्रम हो जाता हैं इसलिए जिस तरह कि किताबें जिस अभ्यासी को बताई जावे उसी तरह तरह कि पढनी चाहिए। अलग अलग संतों ने अलग अलग तरीके से परमात्मा को प्राप्त किया हैं और हर तरीके कायदे कानून भी अलग हैं। इसलिए शुरू में एक ही रास्ते को पकड़ना चाहिए। दरिया (नदी) को एक ही नाव में बैठ कर पार करना चाहिए। एक बार पार होने के बाद अलग अलग रस्ते चल सकते हैं , उसमे कोई हर्ज़ नही। मंजिल देखि हुई हैं तो आदमी बहकता नही। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने पहले दुर्गा को इष्ट मान कर परमात्मा के दर्शन किये , बाद में पन्द्रह और तरीकों से उन्होंने ईश्वर को प्राप्त की। जिस किसी रस्ते से जिस महापुरुष ने इश्वर को प्राप्त किया हैं उसी का जिक्र उसने अपनी बनी या पुष्तक में किया हैं। स्वामी राम तीर्थ ने अपने व्याख्यानों और पुश्तकों में ' हमाओस्त' यानि 'अहंब्रह्म' को लिया हैं। लेकिन हमारे यहाँ 'हमा अज्जाओस्त' को लेते हैं यानि जो कुछ हैं ईश्वर से हैं। अपने आप को उसका बन्दा (सेवक) मानते हैं। (परमात्मा की नजदीकी तो हासिल हो सकती हैं लेकिन उसकी बराबरी

नहीं हो सकती । उसकी बराबरी का दावा करना सरासर गुस्ताख़ी (धृष्टता) है ।) शायद इसलिए 'अनहलक' की सदा लगाने वाले सरमद और मंसूर जैसे पहुंचे हुए ईश्वर भक्तों को फांसी और कत्ल की सजा भुगतनी पड़ी । (ईश्वर एक है वही सबका मालिक है , दूसरा उसका कोई साझेदार नहीं । यदि, वह कृपा करके अपनी चरणों में जगह देता है, यही सामीप्य है । अगर कोई सख्श (व्यक्ति) अपने नौकर से बहुत खुश हो जाय और किसी वक्त उसको अपने बराबर में बैठने की जगह दे तो यह उसकी ऐन कृपा नौकर के उपर होगी । मगर क्या इससे नौकर मालिक की बराबरी का दावा कर सकता है ? मालिक मालिक ही रहेगा और नौकर फिर भी नौकर ही । अगर नौकर यह कहने लग जाय कि " मैं मालिक हूँ " तो यह एक गुस्ताख़ी होगी और इसकी सजा उसे मिलनी ही चाहिए ।) भक्ति मार्ग में एक अवस्था ऐसी आती है जहाँ परमात्मा अपनी कृपा द्वारा अपने आपको साधक में प्रकाशित करता है और साधक अपने आपको उसी का रूप समझने लगता है , लेकिन वहां भी दीनता को नहीं भूलना चाहिए , अपने आपको हमेशा उसका बन्दा या सेवक ही ख्याल करना चाहिए ।

शुरू शुरू में अभ्यासी को गुरु में पूरा विश्वास रखकर उनकी कृपा द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार कर लेना चाहिए । इधर उधर नहीं भटकना चाहिए । जब साक्षात्कार हो जाय या निस्बत कायम हो जाय , तब फिर कहीं जाए कोई हर्ज़ की बात नही है । विश्वास एक ही पर हो सकता है , हरेक पर नहीं ल्हारे गुरुदेव ने कुछ भाइयों को चाचा जी (महात्मा मुंशी रघुबर दयाल जी) कि सेवा में जाने और तालीम हासिल करने के लिए कह दिया था । औरों की देखा देखी मैं भी वहाँ जाता था, लेकिन मेरा मन वहाँ से कुछ कबूल (ग्रहण) नहीं करता था । जब कभी चाचा जी और लडकों की हालत फरमाया करते थे तो मुझे अपने उपर बड़ा ख्याल आता था कि मेरी हालत तो उनसे कहीं गिरी हुई है । मैंने लाला जी से अर्ज़ किया कि और लड़के तो चाचा जी के पास तालीम पाने जाते

हैं , मेरा मन भी ऐसा बना दीजिये कि मैं भी उनकी तालीम को कबूल कर सकूं । उन्होंने फरमाया कि कौन कहता है कि तुम वहां तालीम के लिए जाओ । तुम यहीं रहो । कहने का मतलब यह है कि जब तक ख्याल में मजबूती नही आ जाती इधर उधर भटकने से अभ्यासी कि हालत डिगमिग होने का अंदेशा रहता है और उससे तरक्की में रुकावट आती है ।

गुरु का ख्याल या उनकी बताई हुई बेटों का ख्याल मजबूती से अपने अंदर कायम रखो । अगर उसके विपरीत ख्याल की कोई बात सामने आती है तो उस ख्याल पर ठेस लगती है । इसलिए चाहे किताबें हो या किसी की सोहबत या संग अगर तुम्हारे ख्याल पर ठेस पहुँचती है तो उसे छोड़ दो । एक रास्ता पकड़ कर साक्षात्कार कर लो, फिर चाहे दुसरे रस्ते से उसे हासिल करो । स्वामी रामकृष्ण ने वेदांती तरीके से और बहुत से दीगर तरीके से परमात्मा को प्राप्त किया और आखिर में यही कहा – ' एक ही जगह सब रस्ते ले जाते हैं । '

लालाजी फरमाया करते थे – "पुराने लोगों में बहुत मुहब्बत है, नयों में इतना नहीं है । उनमे फलाँ (अमुक) दो आदमियों को और शामिल कर लो । इनकी हालत बहुत ऊँची है । शायद आगे चलकर ये चिराग – खानदान (कुल का दीपक) हो ।" वास्तव में उन दोनों सज्जनों की हालत थी भी ऐसी ही । प्रेम के जज्बे में डूबे रहते थे । लेकिन किताबें पढने का शौक हो गया और वेदांत कि किताबें पढ़ पढ़ कर उन्होंने वैदिक परस्ती का रास्ता इख्तियार कर लिया 'अहंब्रह्म' । नतीजा यह हुआ कि प्रेम का जज्बा चला गया , रिक्कत चली गयी । लाला जी साहब ने एक खत में उनकी हालत लिखी – 'अफ़सोस । उन्होंने ऐसी किताबें पढ़ी, जिसका यह नतीजा हुआ । '

सूरज से मिलकर एक हो जाने की किसकी ताकत है ? जिसने उसके रूप का दर्शन किया , बेहोश हो गया । तुर के जलवे की बात सुनी होगी । उसका जलवा पहाड़ पर पड़ा, टूट कर चकनाचूर हो गया । उसकी नजदीकी (समीप्य) हासिल हो सकती है, लेकिन उससे मिलकर एक

नहीं हो सकते । हर तरह कि किताब पढ़ लेने से और अपने आपको ईश्वर मान लेने से नुक्सान होता है ।

(हमारे यहाँ का , संतमत लक्ष्य यह है कि अपना एक आदर्श बना लो । उसको (आदर्श, गुरु) सम्पूर्ण रूप में , ईश्वर रूप में देख कर अपने आपको उसके सामने समर्पण कर दो, पूरी तरह लय हो जाओ । यही Goal है , यही लक्ष्य है ।) वेदांत एक अलग philosophy (दर्शन है) , बहुत ऊँची है लेकिन हमे अपने गुरु के बताये हुए एक ही रास्ते पर चलना चाहिए ।

दोनों सिद्धांत के लोग है - हमाओस्त अर्थात अहंब्रह्म और हमा अजाओस्त अर्थात जो कुछ है उसी से है । दोनों ही अपनी जगह ठीक ही । वेदान्तियों ने हमाओस्त को लिया है , पर हमारा तरीका ‘सेव्य और सेवक’ - ‘मालिक और बंदे’ का है ।

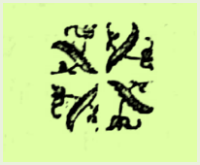

दीनता संतों के चरणों में बैठने से मिलती है।

(बरेली - ता० २५-५-६५)

प्रश्न - दीनता कैसे प्राप्त हो ?

उत्तर - दीनता संतों के चरणों में बैठने से प्राप्त होती है. संत इतने दीन होते हैं कि उनमें बड़प्पन लेशमात्र भी नहीं होता. वे बच्चों की तरह भोले-भाले होते हैं. यदि हम बराबर उनसे सम्पर्क रखें, उनकी सेवा करें, उनके चरणों में बैठें, तो उनके स्वभाव का हम पर भी प्रभाव पड़ेगा. उनके से गुण हम में आने लगते हैं, दीनता आने लगती है. चन्दन के पेड़ों का असर आसपास के पेड़ों पर भी पड़ता है, उनमें भी खुशबू आने लगती है. गोरखपुर में डॉ. बैनर्जी साहब को देखा, उनमें दीनता, शान्ति, मूर्तिमान थी. उनको कभी गुस्सा होते, उत्तेजित होते, नहीं देखा. जब वे राणाप्रताप कॉलेज के प्रिंसिपल थे तो उनके लिए उनके कॉलेज के प्रोफेसर साहिबान कहा करते थे - " Professor Banerjee has lost capacity to be angry. (प्रोफेसर बैनर्जी में क्रोधित होने की क्षमता ही नहीं रही है) एक दिन मैंने देखा कि एक देवी जी, जो उनकी बहुत नज़दीकी रिश्तेदार थीं, उनके पास आयीं. उनको कोई दिमाग़ी बीमारी थी. मुझसे कहने लगीं - डॉक्टर साहब, बुढ़्ढे का दिमाग़ ख़राब हो गया है, यह मेरा फलाँ शख़्स के साथ विवाह कराना चाहता है." फिर वह बैनर्जी साहब के गुरुदेव का फोटो उठा लाईं और कहा - " इसे सर पर रखकर कहो कि मैं तेरा विवाह नहीं कराऊँगा." लेकिन वह महापुरुष शान्त थे. कितनी मानसिक शान्ति थी उनमें. चेहरे पर वही सदा से रहने वाली मुस्कान में कोई फ़र्क़ न था. अहंकार (ego) बिलकुल नहीं था. इसी तरह अगर हम भी अपने आपको दीन (humble) समझ लें तो निरादर और अपमान हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता.

मुसलमानों में हज़रत मूसा एक बहुत बड़े पैग़म्बर हुए हैं. ऐसा सुना जाता है कि वे अब भी पन्थाइयों का मार्गदर्शन करते हैं . एक बार वे ईश्वर दर्शन के लिए तूर पर जा रहे थे. रास्ते में उन्हें शैतान मिला. उसने पूछा, हज़रत, कहाँ तशरीफ़ ले जा रहे हैं ?"

उत्तर मिला - "ख़ुदा के दर्शन के लिए ."

शैतान - "नज़राने के लिए क्या ले चले ? "

मूसा -"अल्लाह के लिए किस चीज़ की कमी है ? वह सबसे बड़ा है, उसको कोई क्या दे सकता है. "

शैतान - " मूसा, तुम भूल रहे हो. बेशक वह सबसे बड़ा है, लेकिन उसके पास नियाज़तमन्दी (दीनता) नहीं है. वह उसी से खुश होता है जिसके पास दीनता है, जो नियाज़तमन्दी (दीनता) लेकर जाता है. "

मूसा को होश आया. वाकई (वास्तव में) ख़ुदा अज़ीम (महान) है, लेकिन उसके पास नियाज़तमन्दी नहीं है. तुरन्त वे दीन बन गये और वहीं उन्होंने अपना दीनता भरा दिल ख़ुदा को पेश किया. उसी क्षण उन्हें ईश्वर का ज़ल्वा नज़र आया, यानी दर्शन हुए.

ईश्वर के पास दीनता नहीं है. जो कोई दीन बनकर उसके दरबार में जाता है, उसे वह मिलता है. संत सदा उसके दरबार में हज़ूरी के साथ हाज़िर रहते हैं, इसलिए वह सदा संतों में मूर्तिमान रहता है. संतों के चरणों में रहने से दीनता और दीनबन्धु दोनों मिलते हैं. संतों के दरबार में दीनता की बहुत क़दर है. उनके पास जब भी जाओ दीन बनकर जाओ.

" लेने को हरिनाम है, देने को अनदान।

तरने को है दीनता, बूड़न को अभिमान। "

परमात्मा ने इस दुनियाँ की रचना की इन्सान के सुख के लिए. हमने अपनी ख़ुदी (अहं) और मन को बीच में लाकर इसे दुःख की जगह बना ली. अगर हम अपनी ख़ुदी को समर्पण करके उसके बन जायें तो सुख ही सुख है. लेकिंन हम यहाँ अपने आपको यहाँ का मालिक बनना चाहते हैं. कहते हैं, हमारा बेटा, हमारी स्त्री, हमारा घर, इत्यादि. सोचो, क्या धन, स्त्री, पुत्रादि तुमने

बनाये ? ये तो सब चीज़ें दुनियाँ का अंग हैं और दुनियाँ उस परमात्मा ने बनाई है, वही इसका मालिक है . घर वालों, लड़कों आदि के झगड़े तो तुमने ख़ुद अपने ऊपर मोल ले लिए हैं. सबको उसका समझो और भरसक उनकी सेवा करो. अपने अहं, ख़ुदी, को तोड़ दो, यही बीच का रोड़ा है. हर बात में अपने को दीन समझो. जितनी उसने हमें क्षमता दी है, उतनी दूसरों की सेवा करें. दुःख वहाँ होता है जहाँ हम अपने अधिकार माँगते हैं दूसरों से, लेकिन उनके प्रति अपने कर्तव्यों को भूल जाते हैं. अगर हम अपना कर्तव्य समझकर सब काम करें, तो उसमें दुःख न हो. नातेदारों और रिश्तेदारों से मोह न हो. अगर हम मोह में फँस कर अपने मन को दुःखी रखेंगे तो परमात्मा की उपासना किस मन से करेंगे ? उन्हें अपना न समझो, परमात्मा का समझ कर उनकी तरफ़ अपने 'फ़र्ज़' पूरे करो. ऐसा करने से फ़र्ज़ भी पूरा हो जाता है और बन्धन से भी बच जाते हो.

सबका मालिक एक ही है. वही हमारा बाप है, प्यारा बाप. उसे सिर्फ़ अपने शुभ-अशुभ कर्मों का जज ही मत समझो, उसे सच्चा बाप समझो. वह भूत, भविष्य सब जानता है, सर्व शक्तिमान है. वही सही मायने में जानता है कि हमारी भलाई किस में है. उसी पर निर्भर क्यों न रहो ? उसी में

तुम्हारी भलाई है. गृहस्थ में सबसे हिल मिल कर चलो. अगर कोई तुम्हारे पास आवे तो ज़रूरत के मुताबिक़ मौक़े पर सलाह दे दो. वह माने तो अच्छा है, न माने तो आपत्ति मत करो. बुरा मत मानो.

दुनियाँ में अगर कोई सबसे कठिन काम है तो वह मन का मारना है. सन्यासी दुनियाँ छोड़कर जँगल या एकान्त में रियाज़त (अभ्यास) करते हैं. लेकिन जो काम सन्यासियों के अभ्यास से नहीं होता वह गृहस्थ को घर में करने से, सबको सहयोग देने से हो जाता है. गुरुदेव ने लिखा है - " और मतों में जो काम अग्नि तपने, व्रत रखने, चिल्ला (मुसलमानों में 40 दिन का उपवास) चढ़ाने वग़ैरा से नहीं होता, वह हमारे यहाँ गृहस्थ में सबों की तानाकशी (उलाहना देना, ताना मारना) सुनने, लानत मलामत (लान्छन) बर्दाश्त करने और सब में अपने आपको क़सूरवार मानने से हो जाता है. हमारे यहाँ इसी को तप कहते हैं ". तुम्हारा काम सेवा का है. इसे दृढ़ता से पकड़ लो. चाहे कोई विघ्न आये, अपनी ख़ुदी को तोड़ते हुए उस सेवा मार्ग पर चलते जाओ. जो संतों की बुराई करते हैं, संत उन्हें अपना मित्र समझते हैं और जो संतों की तारीफ़ करते हैं, उन्हें वे अपना दुश्मन समझते हैं. कबीर साहब कहते हैं -

" निन्दक नियरे राखिये, आंगन कुटी छवाय।

बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय।। "

अगर इस तरह हम दुनियाँ में रहें तो फ़क़ीरी ख़ुद-ब-ख़ुद आने लगती है. मन को शान्त कर दो. आत्मा तुम्हारे अन्दर है

उसका जन्म-सिद्ध अधिकार है - अमर सुख, अमर जीवन और अमर आनन्द (Eternal Bliss , Eternal Life, Eternal Happiness) मगर मन ने उसे अपने नीचे दबा रखा है, इसलिए परमात्मा

का अपना रूप उसमें नहीं झलकने पाता. मन को शान्त कर लो, आवरण हट जायेंगे और वे सारे गुण जो परमात्मा के हैं, उसमें नज़र आने लगेंगे.

हमारे देश में रोज़ाना की रहनी-सहनी में हम ऐसी बातें पाते हैं जिनसे मन का दमन होता है. अतिथि सत्कार भारतवर्ष में एक बहुत ऊँची चीज़ रही है. अतिथि सत्कार के लिए राजा मोरध्वज ने अपने बेटे को आरे से चीरा. महाराज शिवि ने अपने शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये. महाराणा प्रताप ने जँगलों में भी अतिथि सत्कार से मुँह नहीं मोड़ा, जहाँ उन्हें घास की आधी रोटी ज़िन्दा रहने के लिए मिलती थी. ऐसी-ऐसी सच्ची ऐतिहासिक घटनायें आदर्श पेश करती हैं - सच्चाई का, त्याग का. हमारे देश में यह रीति चली आयी है कि अपने ही नहीं बल्कि ग़ैर भी, भले ही वह दुश्मन क्यों न हो, जो दरवाज़े पर आ गया, शरण में आ गया, उसकी सेवा और रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया, चाहे कितनी ही मुसीबतों का सामना क्यों न करना पड़े. मन इससे कितना शान्त होता है. हमारा साहित्य कितना ऊँचा है कि हर क़दम पर मन का दमन और आत्मा का आनन्द मिलता है. इसके विपरीत पाश्चात्य देशों को देखो तो पाओगे दिखावा, स्वार्थ, अन्दर कुछ बाहर कुछ. उनके यहाँ किसी चीज़ का जितना ज्यादा दिखावा करो उतना ही अच्छा मानते हैं. स्वार्थ की यहाँ तक हद हो गयी कि बाप-बेटे अपने स्वार्थ में एक दूसरे से बेग़रज़ हो जाते हैं. हमारे देश में यदि कोई गृहस्थ धर्म का ठीक तरह से पालन करे तो शान्ति का रास्ता आसानी से खुल जाता है. अपने स्वार्थ को मार कर दूसरों का उपकार करना - यही हमारे यहाँ का रास्ता है. जिस घर में सहयोग नहीं है, वहाँ शान्ति नहीं है. मन ईश्वर की तरफ़ कैसे जायेगा ?

सबसे पहले ज़रूरत इस बात की है कि मन ईश्वर के चरणों में लग जाये. आत्मा, जो मन की क़ैद में है, उसे वह तब छोड़ेगा जब परमात्मा की तरफ़ जाय, शान्त हो जाय. पहले आचरण (character) का बनाना है. इसका यह मतलब है कि अपनी इच्छाओं को जायज़ (न्यायोचित, धर्म

के अनुकूल) तरीक़े पर भोग कर पूर्ण करो, उनसे उपराम हो जाओ. सबके साथ सहयोग करो. अपना बड़प्पन और हुकूमत दूसरों पर मत थोपो, हाकिम मत बनो, सेवक बनो, तब शान्ति होगी. जब मन में कोई झँझट नहीं होगा तभी पूजा के वक़्त तबियत लग सकेगी और अभ्यास में मन ऊँचा उठता जायगा.

सन्यास लेकर जंगल में जा रहने से मन नहीं मरता, क्योंकि वहाँ वे भोग के सामान नहीं हैं जिनसे मन लुभाया जा सकता है, या जिनका प्रभाव मन पर सीधा पड़ता है. जहाँ भोग की वस्तुएँ सामने आयीं, सन्यासी का मन चलायमान होने लगता है. इसलिए वास्तविक शान्ति गृहस्थ धर्म में ही है.

संतों ने अपनी ज़िन्दगी ऐसी बना ली है जो आदर्श होती है. उनके पास बैठने से असर ज़रूर होता है. चन्दन के वृक्ष के पास और बहुत से पेड़ होते हैं, उनमें भी चन्दन का असर आ जाता है. महापुरुषों के चरणों में बैठने से दीनता अवश्य आती है.

कबिरा संगत साधु की, ज्यों गंधी की बास।

जो कुछ गंधी दे नहीं, तो भी बास सुबास।।

सन्तों के साथ सोने का लाभ

अवतारों और संतों में भेद

गाज़ियाबाद, ता० १६-६-६९

सवेरे चार बजे से आठ बजे तक सत् का प्रभाव अधिक रहता है । इसी को अमृतबेला कहा गया है। आठ से बारह बजे तक रज का ज़ोर रहता है, और बारह बजे से शाम के चार बजे तक तम का ज़ोर रहता है । इसी तरह शाम से भोर तक यह चक्र पुनः लग जाता है। इन चार धण्टों के अन्दर भी चार भाग होते हैं जिनमें प्रत्येक का न्यूनाधिक प्रभाव रहता है।

रज के समय में आदमी का रुझान दुनियाँ के काम काज में ज़्यादा रहता है । तम के समय में आलस, इन्द्रियभोग और बुराइयों का जोर रहता है, और सत् के समय में अच्छे विचार उठते हैं, नेक काम करने को जी चाहता है । ईश्वर का ध्यान आता है । यह सत् का समय ही ऐसा होता है कि जब आत्मा * की चाल ऊपर की तरफ तेज़ी से चल सकती है । उस समय रुकावटों का जोर कम रहता है। अमृत बेला में तो शोर-गुल भी बहुत कम या नहीं के बराबर होता है। इसलिए इस समय में, ध्यान अच्छी तरह बन सकता है । रात बारह बजे से चार बजे भोर तक का सभय घोर तम का है। इस समय में आलस का सबसे अधिक जोर २हता है । दुनिया भर के बुरे-से-बुरे काम घोर जघन्य अपराध इसी समय में होते हैं । इस समय मन बहुत नीचे घाट पर उतर जाता है और बड़ी ख़राब-खराब धारें नीचे को तरफ़ चलती हैं । दुनियादार इस वक्त आलस में सोते हैं और संत लोग जागते हैं।

जागृत, स्वप्न, सूष्ष्ति, तुरिया और तुरियातीत—ये पाँच अवस्थाएं होती हैं जिनका खुलासा यहां देने की ज़रूरत नहीं । सिर्फ यह बताना है कि सन्त इस हरेक हालतों में ईश्वर के ध्यान में रहते हैं लेकित शरीर रखने के लिए जैसे भोजन जरूरी है वैसे ही आराम भी । इसलिए सन्त आम तौर पर रात को दस बजे तक विश्राम को चले जाते हैं और एक दो घंटे सोने के बाद बारह बजे के लगभग जाग जाते हैं और घोर तम के समय को वे ईश्बर के भजन और ध्यान में ब्यत्तीत करते हैं। जो कोई सन्तों के साथ सोता है बह बड़ा भाग्यशाली है। उनके साथ जागने का बड़ा भारी फल होता है ।

(जब किसी सन्त के साथ सोओ तो उसके ख्याल में सोओ । संत का स्थान बहुत ऊंचा होता है । उसका ध्यान करने से साधक को भी उसी घाट का लाभ होता है । सन्त की आत्मा मन के पर्दो से न्यारी हो चुकी होती है. जो कोई उनके ख्याल में हैं, उनकी आत्मा भी ख्याल के सहारे ऊ'ची उठ जाती है। संत के साथ रात को जागता रहे और बाहोश रहे तो उसका बड़ा गहरा असर होता है।)

दरअसल मन और आत्मा एक ही चीज हैं । फर्क सिर्फ पर्दों की वजह से है। आत्मा पर जो पर्दे पड़े हुए हैं उन्हें तम, रज, सत, , लोभ, मोह, अहंकार वगैरा के आवरणों ने ढंक लिया है । उसका असली रूप छिप गया है और वह नीचे दब गई है । उसके गिलाफ़ों में लिपटे हुए रूप का नाम ही 'मन' है । मन कोई अलग चीज नहीं है । वह बेजान है। उसे शक्ति आत्मा से ही मिलती है। सन्तों ने उन गिलाफों को उतारकर फेंक दिया है। उनकी आत्मा आजाद हो चुकी है और अपने प्रीतम परमात्मा के चरणों में लगी रहती है । उनकी सोहबत से फायदा उठाना चाहिए ।

कहा है :-

"हम नशीनी सा अते बा औलिया,

बहतर अज् सद साल ता अत बेरिया"

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी ते पुनि आध

कबीर संगत साध की, कटे' कोटि अपराध "

(संतों के पास एक पल भर के लिए बैठना, सच्चे दिल से की गई सौ वर्ष की तपस्या से भी कहीं बढ़कर है) ।

संत और अवतार में भेद है। दोनों ही ईस्वर की शक्ति लेकर आते हैं। अवतार की तालीम अगर लोग नहीं सुनते हैं तो वह सख्ती से पेश आता है और तलवार उठा लेता है। सन्त प्रेम का रूप होते हैं. वे सिर्फ प्रेम से समझाते हैं । जो उनकी तालीम को क़बूल कर लेते हैं उनको अपने साथ ले जाते हैं । बाकी पर बीज डाल जाते हैं । अवतार धर्मशास्त्र में तब्दीली कर देते हैं या उसे बिल्कुल बदल देते हैं । पर सन्त लोग घर्म-शास्त्र में कोई तब्दीलीं नहीं करते; हाँ, अभ्यास में समय और आदमियों की हालतें देखकर सहूलियत कर देते हैं । अवतार दुनियां के अंदर सत्ता कायम करने के लिए आते हैं ताकि दुनियाँ में भलाई कायम रहे । सन्त दुनियाँ से निकालने के लिए आते हैं । अवतार बहुत मुद्दत बाद आते हैं; संत जल्दी-जल्दी आते रहते हैं । अवतार शक्ति का रूप होते हैं; सन्त दया, दीनता और प्रेम का रुप होते हैं ।

संत दो तरह के होते हैं । एक वे जो दयाल देश से सीधे आते हैं । ये पैदाइशी तौर पर दुनियाँ से हटे होते हैं और जीवों को भवसागर से निकलने के लिए आते हैं । दुसरे वे जो ऐसे संतों

की , जिनका उपर जिक्र किया गया हैं , सोहबत से फायदा उठाकर दयाल देश तक रसाई हासिल कर लेते हैं।

इसलिए जो चाहते हैं कि दुनियां के बन्धनों से छुट जाएँ और हमेशा हमेशा रहने वाला सुख और शांति नसीब हो, वे संतों के शरण में जाएँ और उनकी दया और कृपा के मोहताज़ बने रहें । इसी में कल्याण हैं।

सन्तों का निर्मल परमार्थ

व आत्मा की आज़ादी

दिल्ली : ता० १८-९-६९

परमार्थ-पथ पर चलने वालों को धीरे-धीरे मन्ज़िल तय करनी चाहिए. इससे स्थिरता आ जाती है. तेज़ी से न तो हरेक चल सकता है और न ही उसमें मज़बूती आती है. जो जितना तेज़ चलेगा उतना ही उसे गिरने का भी डर रहेगा. पहले अपने को तम से सत पर ले जाओ. तुम रज के स्थान पर हो, कभी तम की तरफ़ जाते हो, कभी सत की तरफ़. जब मन बुरी आदतों की तरफ़ जाता है, बुरे काम करता है और बुराई सोचता है, तब वह तम की तरफ़ जाता है. उसे वहाँ से हटाकर अच्छी बातों में लगाओ. नेक सोचो, नेक करो और नेक बनो - यानी मन और वचन से नेकी का ही व्यवहार हो, तब तुम सत पर आ सकोगे. मगर जिस तरह तम में बन्धन है, उसी तरह सत में भी बन्धन है. एक लोहे की ज़न्जीर है तो दूसरी सोने की. जहाँ अच्छाई मौजूद है वहाँ बुराई का ख़्याल पहले मौजूद है. अच्छाई और बुराई एक ही तस्बीर के दो पहलू हैं. इसलिए सत पर आने के बाद उसे भी छोड़ दो, उससे ऊपर आ जाओ. यानी काम तो नेक करो लेकिन अपने को उसका कर्ता मत समझो. स्वभाव ही ऐसा बन जाय कि सब काम ख़ुद- ब - ख़ुद अच्छे होने लगें. जहाँ बुराई का काम करने से बुरा संस्कार बनता है, वहाँ अच्छाई का काम करने से अच्छा संस्कार बनता है. दोनों में ही बन्धन है. बुरे को बुरा भोगना पड़ेगा और अच्छे को अच्छा. मोक्ष कहाँ हुई ? इसलिए अच्छाई के ख़्याल से भी ख़ुद को हटा लो. स्वभाववश सब काम अच्छे हों, सब सोचना अच्छा हो और व्यवहार भी अच्छा हो. सत्कर्म, सतविचार और सद्व्यवहार. जब ऐसे बन जाओगे

तब चित्त की निरोधावस्था पैदा होगी, यानी चित्त अपनी कलाबाज़ियाँ करना बन्द कर देगा. इसके बाद आत्मा मन के दबाब से छुटकारा पाने लगती है, और यहीं से परमार्थ का रास्ता खुलता है.

परम + अर्थ = परमार्थ. जिसका जो परम धर्म है, जिसने जो अपना लक्ष्य बना रखा है, वही उसके लिए परमार्थ है. लेकिन वह परमार्थ व्यक्तिगत है. लोग इसी जन्म में या अगले जन्म में जिस चीज़ को पाने के लिए यत्न करते हैं और उसी में लगे रहते हैं, वही उनका परमार्थ है. कोई देवताओं और अवतारों के दर्शन करते हैं, वह उनका परमार्थ है. लेकिन सन्तों का परमार्थ इन सबसे ऊँचा और सबसे न्यारा है. औरों के परमार्थ में कोई-न-कोई ख़्वाहिश लिपटी हुई होती है . सन्तों के परमार्थ में कोई ख़्वाहिश बाक़ी नहीं रहती. ख़्वाहिश उठाने वाली चीज़ तो मन है. यहाँ उसे शान्त कर देते हैं, तोड़कर रख देते हैं.

" तर्के दुनियाँ, तर्के उक़बा, तर्के मौला, तर्के तर्क "

(दुनियाँ के भोगों के ख्यालों को छोड़ो, स्वर्ग के ख़्याल को भी छोड़ो, ईश्वर को भी छोड़ो - यानी उससे मिलकर एक हो जाओ, दुई न रहे और फिर छोड़ने के ख़्याल को भी छोड़ो)

मन के फंदे से न्यारी होकर आत्मा जब ईश्वर के चरणों में लगे, यही सन्तों का परमार्थ है. सूफ़ियों ने कहा है -

"अव्वले मां आख़िरे हर मुनतहीस्त ।

आख़िरे मां जेबे तमन्ना तिहीस्त ।। "

(भावार्थ - मेरी शुरुआत वहाँ से होती है जहाँ अन्य पन्थाइयों का आख़ीर होता है और मेरा आख़ीर वहाँ होता है जहाँ तमन्ना की जेबें ख़ाली होती हैं, यानी कोई इच्छा बाक़ी नहीं रहती.)

अगले जन्म की बात क्यों सोचते हो ? जो कुछ करना है वह इसी जन्म में कर लो. आगे न जाने कौन सा जन्म हो. अगले जन्म में ख़वास (आदत, स्वभाव) के मुताबिक जानवर और पत्थर

भी बन सकते हो और देवताओं की योनि की भी प्राप्ति हो सकती है. यह सब भोग योनियाँ हैं. कर्म केवल मनुष्य चोले ही में बन सकता है, यानी मनुष्य चोला ही एक ऐसा चोला है जिसमें परमात्मा की प्राप्ति की जा सकती है और यह चोला बार-बार नहीं मिल सकता. जो कुछ यत्न करना हो, इसी जन्म में करो. सब बातों से ध्यान हटाकर ऐसी बात में लगाओ जिससे परमार्थ का रास्ता खुले. एक बार रास्ते पर पड़ जाओगे तो वह कमाई बेकार नहीं जायेगी. आवरण पड़ सकते हैं लेकिन वे आवरण हटाये जा सकते हैं. हीरा मिटटी में दब जाये तो उसका कुछ नहीं बिगड़ता. मिटटी हटा दो, फिर हीरे की चमक वैसी-की वैसी रहेगी. दुनियाँ की चाहों को ख़त्म कर दो. यहाँ की चाहों को चाहना व्यर्थ है और इस दुनियाँ से परे की चीज़ को चाहना परमार्थ है.

जो अज्ञानी हैं वे बिना सोचे -समझे काम करते हैं, उनमें पूर्ण अज्ञानता भरी है. जो ज्ञानी हैं वे भी बिना सोचे-समझे करते हैं, उनमें पूर्ण ज्ञान है. जो सोच-समझकर करते हैं उन्हीं में कमी है. ज्ञानी मालिक से मिलकर एक हो चुके हैं और मालिक अक़्ले कुल (all wisdom) है, उसको सोच-विचार की ज़रूरत नहीं. जो उसमें रँगे हुए हैं उन्हें भी सोच-विचार की ज़रूरत नहीं पड़ती, उनके सब काम स्वाभाविक रूप से होते रहते हैं. जो सोचते रहते हैं - यह करें या वह करें - यह बीच वालों की हालत है. यही कश्मकश है, सन्घर्ष (struggle) है. इसी को देवासुर संग्राम भी कहा गया है. अच्छी और बुरी वासनाओं में युद्ध, आत्मा और मन में युद्ध, यही कहलाता है. मन को लालच है दुनियाँ का, और आत्मा को लौ लगी है अपने प्रीतम के चरणों में लिपट कर एक हो जाने की. दोनों अपनी-अपनी तरफ़ खींचते हैं और यही कश्मकश होती रहती है. जो इसमें सफल हो गया, यानी जिसने मन के चंगुल से अपनी आत्मा को न्यारा कर लिया, उसने समझो हीरा पा लिया. इसके लिए जद्दोजहद (सन्घर्ष, प्रयत्न) करनी पड़ेगी. बिना इसके किये यह मिल नहीं सकता.

तुमको बुद्धि इसलिए दी गयी है की सदविचार (right discrimination) करते हुए पहले अपनी दुनियाँ बनाओ. यहाँ की चीज़ों को धर्मशास्त्र के अनुसार भोगो और जब यह देख लो कि यहाँ कुछ नहीं है तो फिर उस तरफ़ से उपराम हो जाओ और आत्मा की तरफ़ चलो. हर क़दम पर देखो कि तुम्हारे अन्दर क्या नुक़्स (कमी) है, उन्हें दूर करते चलो - कुछ को विवेक से और बाकियों को भोगकर. अपने लक्ष्य, यानी परमात्मा को, हमेशा अपने सामने रखो और महापुरुषों के बताये हुए रास्ते पर चलकर मन्ज़िल तय करते चलो.

रास्ते में कठिनाइयाँ आती हैं और हम यह जानते हुए भी कि परमात्मा की प्राप्ति इसी जन्म में हो सकती है, सब-कुछ भूल जाते हैं और दुनियाँ में फँस जाते हैं. यह क्यों होता है ? इसका जबाब यह है कि दो ज़िन्दगियाँ हैं - एक मन की ज़िन्दगी और दूसरी आत्मा की. दोनों ही स्वाभाविक या प्राकृतिक हैं. आत्मा का स्वभाव है कि वह ईश्वर से मिल जाना चाहती है, और उसका रास्ता ऊपर को या अन्तर में को है. मन का स्वभाव है कि वह दुनियाँ चाहता है, उसका रास्ता नीचे को या बाहर को है. इस लोक में आकर आत्मा मन से दब गयी है, यानी मन आत्मा पर ग़ालिब (दबोचे हुए) है. इसलिए वह इसे दुनियाँ की तरफ़ ही ले जाता है. यहाँ द्वन्द अवस्था पैदा हो जाती है, तेरा-मेरा, अच्छा-बुरा, उजाला-अँधेरा, सुख-दुःख - गरज़े कि हर चीज़ के दो पहलू दिखाई देते हैं. यह ज़िन्दगी सतह पर की मन की ज़िन्दगी है. सतह को साफ़ करो. उसके नीचे दूसरी ज़िन्दगी है, यानी मन को आत्मा के ऊपर से हटाओ. तब आत्मा की ज़िन्दगी नमूदार होगी. उसके लिए यत्न करना पड़ेगा. दुनियाँ की चीज़ों के लिए यत्न करना बहादुरी नहीं है, वह तो तुम्हारे लिए पहले से निश्चित हैं, तुम्हें मिलेंगी ही. जो उनसे उपराम हो गए हैं उनके लिए ही सन्त-मत है. सन्त उनसे कहते हैं - " आओ हम तुम्हें रास्ता बतायें, हम तुम्हारी मदद करेंगे और ईश्वर भी तुम्हारी मदद करेगा. मगर

पुरुषार्थ तो तुम्हें करना ही पड़ेगा. आत्मा का रूप समझने के लिए जिस्म (शरीर), मन, बुद्धि और अहंकार का पर्दा हटाना ही पड़ेगा. तब आत्मा का दर्शन होगा क्योंकि आत्मा इन सबसे दबी हुई है. "

सन्तमत कभी यह नहीं बतलाता कि दुनियाँ छोड़ो. गुरुदेव, परमसन्त महात्मा रामचन्द्र जी महाराज, ने एक जगह लिखा है - " बाक़ई है कि मेरी तालीम दुनियाँदारी सिखाती है. अगर इन्सान मुकम्मिल इन्सान नहीं बन सकता तो वह ख़ुदा को नहीं देख सकता और न ही अपनी समझ उसको आ सकती है. अगर मुक़म्मिल दुनियाँदार बन गया तो वह इस क़ाबिल हो सकता है कि अपने आपको देख सके और ख़ुदा को देख सके. "

जब मनुष्य दुनियाँ की चीज़ों को आहिस्ता-आहिस्ता भोग कर देख लेता है कि इनमें असली सुख नहीं है, यह दुनियाँ रहने की जगह नहीं है. तब वह तम से हट कर सत की तरफ़ मुड़ता है. तुम भी सत पर आ जाओ. उस मालिक पर विश्वास करो, उसकी शक्ति के साथ एवं इस प्रकृति माता के साथ सहयोग करो. घर के लोगों को, जिनको खिलाने-पिलाने, पढ़ाने और दुनियाँ के फ़रायज़ (कर्तव्य) पूरा करने का काम तुम्हें सौंपा गया है, उसे उसकी सेवा समझ कर करो. उनके ऊपर हुकूमत मत करो. हुकूमत तो सिर्फ़ मालिक की होती है, और मालिक सिर्फ़ एक ही है और वह है परमात्मा. तुम्हें तो यहाँ सेवा के लिए भेजा गया है, तुम अपने को मालिक कैसे समझते हो ? अपने घरवालों की ख़्वाहिशात की मातहती में मत पड़ो. मगर उन्हें गुनाह करने से रोको. कोई तुम्हारे काम नहीं आयेगा, कोई तुम्हारे मतलब का नहीं हो सकता. किसी को बिना माँगे अपनी सलाह मत दो. अगर कोई तुम्हारी सलाह माँगे तो वक्त और मौके के मुताबिक़ जो ठीक समझो, उसे बता दो. ऊपर- ऊपर सबसे ताल्लुक़ रखो मगर अन्दर से अपने को सबसे अलहदा रखो. इस तरह तुम अपने को बनाते चलोगे तो उसका असर वातावरण पर पड़ेगा. अपने बच्चों और जिन औरों के सम्पर्क में आओगे, उन पर असर पड़ेगा. सन्त कि छह पुश्तें (पीढ़ियाँ) अपने आप तर जाती हैं.

दुनियाँ में जितने उनके निकट सम्बन्धी हैं, उनका उसे ख़्याल आता है. ऊपर के वंश में वह बाप और दादा तक सोचता है और नीचे के वंश में बेटे और पोते तक. ख़ुद वह परमात्मा में लीन रहता है, इसलिए जिसका भी वह ख़्याल करता है, उस पर असर ज़रूर पड़ता है. शिष्य अगर गुरु का ध्यान करे तो जिस स्थान पर गुरु की बैठक उस समय होती है, वहाँ तक फ़ायदा शिष्य को आप से आप हो जाता है.

सिकन्दर दुनियाँ का बादशाह था. मरते वक्त उसने वसीयत की कि मरने के वक़्त मेरे हाथ क़फ़न के बाहर निकाल देना जिससे दुनियाँ देखे कि सिकन्दर महान, जिसके पास सारी दुनियाँ की बादशाहत, धन-दौलत और सारे साज़ो-सामान थे, इस दुनियाँ से ख़ाली हाथ जा रहा है. जो कुछ दुनियाँ का है, दुनियाँ में ही रह जायेगा. तुम्हारे ऐमाल (शुभाशुभ कर्म), तुम्हारी परमार्थ की कमाई ही तुम्हारे साथ जायेगी. तुम्हें ईश्वर ने सब कुछ दिया है, फिर भी तुम सन्तुष्ट नहीं हो ? फिर क्यों तुम उसमें फँसते हो ?

आदमी चार तरह के होते हैं - (1) दुनियाँदार - जिनका काम खाना-पीना, सोना, मैथुन कर लेना और दुनियाँ की अपनी ज़रुरियात पूरी करने में लगे रहना. वे ईश्वर से बेख़बर हैं. ऐसे लोग सत्संग में नहीं आते. (2) दूसरे मुक्त पुरुष होते हैं. वे तक़मील पा चुके होते हैं - सम्पूर्ण हैं. (3) तीसरे वे हैं जिनके पास सब सुख हैं, और अगर कमी है तो इस बात की कि उन्होंने कोई गुरु नहीं किया है, या कोई मज़हबी बात उनकी ज़िन्दगी में नहीं हुई है. वे सोचते हैं कि लाओ, इसे भी कर लें ताकि यह कमी भी पूरी हो जाय. (५) चौथे वे लोग हैं जिन्होंने दुनियाँ भुगत कर उसमें कुछ सार नहीं पाया और परमार्थ को मुक़द्दम (मुख्य) समझा है. पिछली ज़िन्दगियों में दुनियाँ भुगत कर औरों से कुछ पग आगे हैं. उनके संस्कार उसी हालत में मौजूद हैं, उन्हें जगाना है. परमात्मा ने मनुष्य चोला देकर उन्हें मौक़ा दिया है कि वे अपनी तरक्की करें. जो बीज ईश्वर प्रेम का एक बार

पड़ गया वह जाता तो है नहीं, मगर बढ़ता है सिर्फ़ इन्सानी चोले ही में. अगर कोई जवाहर पाख़ाने में गिर जाय तो वह दब ज़रूर जायेगा, मगर पानी डालो, फिर साफ़ हो जायगा. उसका क्या बिगड़ा ? इसी तरह परमात्मा के प्रेम को बढ़ाना चाहिए. इसकी दो तरक़ीबें हैं - एक तो गुरु से पूछ कर इस तरह की किताबें पढ़ना जो इस रास्ते से ताल्लुक़ रखती हों और उन पर अमल करते चलो. दूसरी, तम और रज से निकलकर सत पर आ जाना, यानी अपने इख़लाक़ को सुधारना (character formation) और सन्तों की सौहबत करना (सत्संग). अपनी बुद्धि से काम लो, सोचो-विचारो और जो चीज़ें तुम्हें दुःख देती हैं उन्हें छोड़ दो. दिन प्रति दिन निखरते चलोगे, आत्मा साफ़ होती चलेगी. आत्मा और किसी के साथ नहीं ब्याही जा सकती, उसका पति परमेश्वर है. जब तक यह मन के चंगुल में है, दबी हुई है, उसे होश नहीं है. जब सत पर आ जाओगे, तो होश आ जायेगा कि मेरा एक ही स्वामी है. असली आज़ादी मन के बन्धन की है. जब यह रुकावट हट जाती है तब वह आज़ाद हो जाती है. जो हर बाधा से टक्कर लेता हुआ चला जाय, जो उन सबको ठोकर मार कर आगे बढ़ता जाय, वही सच्चा परमार्थी है. उसे किसी की परवाह नहीं, वह अपनी आज़ादी चाहता है.

रहना तो इसी दुनियाँ में पड़ेगा. दुनियाँ नहीं छोड़ सकते. पहाड़ों पर जाने से, घर बार छोड़ देने से, दुनियाँ नहीं छूटती, दुनियाँ की कुछ चीज़ें भले ही छूट जायें. मन से दुनियाँ को छोड़ो. सब काम इसी तरह होते रहेंगे जैसे होते हैं, लेकिन सिर्फ़ भाव बदलना पड़ेगा. हर काम को परमात्मा का काम समझकर उसकी सेवा करो और इस भाव को स्थायी बनालो. लगातार यही ख़्याल रहे की जो काम तुम कर रहे हो वह ईश्वर की सेवा है. यह दुनियाँ ईश्वर की है, सभी ईश्वर के हैं. जो काम हम कर रहे हैं, ईश्वर की सेवा कर रहे है.मन समुन्द्र की तरह है, इसमें अथाह दुनियाँ भरी पड़ी है. धीरे-धीरे उसमें परमात्मा का भाव भरो, उसका नाम भरो. जैसे-जैसे वह भरता जायेगा, दुनियाँ उसमें से

बाहर निकलती जायेगी. अगर मन में न भरे तो उसमें ज़बरदस्ती ठूँस-ठूँस कर भरो. प्यार तो आप अब भी करते हैं - स्त्री को स्त्री की तरह, पुत्र को पुत्र की तरह और दूसरों को अपनी अपनी हैसियत के मुताबिक़. लेकिन इसका भाव बदलो. भाव बदलने पर प्यार तो वही रहेगा, लेकिन फ़र्क़ इतना हो जायगा कि तब तुम सबको ईश्वर का समझ कर प्यार करोगे. अभी अपना समझ कर प्यार करते हो, इसमें बन्धन होता है, उसमें मोक्ष होती है. अपना अहं (ego) ख़त्म करके ईश्वर के अहं (divine ego) से काम लो. आनन्द ही आनन्द रहेगा. दुनियाँ ख़ुशी का घर नज़र आयेगी.

जहाँ वासना मौजूद है, किसी स्वार्थ को लेकर किसी से प्यार, वह बदलने वाला है. अगर उसे परमात्मा के प्रेम से सरोबोर कर दो, ईश्वर की भक्ति में उसे रंग दो, तो वह बढ़ता जाता है, न बदलता है और न घटता है. इसमें दोनों का भला है. जिससे प्यार करोगे उसका भला है और अपना भी भला है. अगर ख़ुदी (मेरे पन) के साथ प्यार करोगे तो उसका भी नाश और अपना भी. पहले अपने प्रेम को परमात्मा के प्रेम की आग में तपा लो, फिर उसकी मैल छूट जायगी और वह प्रेम अनन्त बन जायेगा.

हमारा तरीक़ा

गाज़ियाबाद

(ता० १०-१०-६५)

हमारे यहाँ ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग - दोनों को साथ-साथ लेकर चलते हैं । जहाँ तक लक्ष्य का सम्बन्ध है, हमारे यहाँ केवल एक ईश्वर को मानते हैं, जो सर्वभूतों का आधार है, जो अनन्त है, अनादि है और वर्णन में नहीं आ सकता । जो सब ब्रह्माण्डों का मालिक है, सब जगह व्याप्त है और जो सब की आत्मा है, सिर्फ़ उसी एक निर्गुण की उपासना करते हैं । जितने अवतार या पैग़म्बर आये, वे उनकी सिर्फ़ कुछ शक्तियाँ लेकर आये, और अपना-अपना काम पूरा करके चले गए । भगवान राम चौदह कला लेकर अवतरित हुए और कृष्ण भगवान सोलह कलायें लेकर आये, मगर पूरी शक्ति लेकर कोई नहीं आया। जैसे हमारे देश में अवतार हुए वैसे अन्य देशों में भी हुए हैं। किसी ने उसे ईश्वर का बेटा कहा और किसी ने पैग़म्बर। ईसाइयों में हज़रत ईसा मसीह हुए, जिन्हें ईश्वर का बेटा कहा गया। मुसलमानों में हज़रत मौहम्मद साहब हुए, वे पैग़म्बर कहलाये। किसी भी नाम से पुकारो, ये सब उसी परमात्मा के प्रतिनिधि (representative) थे जो सिर्फ़ 'एक' है। वे स्वयं परमात्मा नहीं थे, बल्कि उनकी शक्तियाँ लिए हुए थे। अन्तिम प्रतिनिधि हज़रत मौहम्मद हुए। उन्होंने भी एक ही परमात्मा 'जाते-वाहिद' की इबादत (उपासना) करना बताया।

उस पारब्रह्म परमात्मा की इबादत या उपासना के लिए जो तरीक़े हैं, उन्हें चार हिस्सों में बाँटा गया है। उनके नाम हैं - (1) शरीयत, (2) तरीक़त. (3) मार्फत , और (4) हक़ीक़त।

<u>शरीयत</u> कहते हैं विधि-विधान या कर्मकाण्ड को, जिससे इन्द्रियाँ शुद्ध रहें और शरीर तन्दरुस्त रहे । जो जिस धर्म में पैदा हुआ उसके मुताबिक़ उसके रहन-सहन, सामाजिक रीतियों पर चलना

और बरतना, खान-पान, शादी-विवाह वग़ैरा आ जाते हैं। अगर कोई मुसलमान है तो उसको मुसलमानी शरह लाज़िम हैं, जैसे नुमाज़ पढ़ना, वुज़ू करना, उसी समाज की प्रचिलित पोशाक पहनना, चार से अधिक विवाह न करना, वग़ैरा। यदि कोई हिन्दू है तो उसे हिन्दू धर्म शास्त्र के मुताबिक़ रहनी-सहनी बनाना चाहिये। यही शरियत या कर्मकाण्ड है। अपने-अपने धर्म के मुताबिक़ कर्म करना शरियत कहलाता है। तरीक़त कहते हैं उपासना को, जिससे मन के विकार दूर होते हैं और मन शुद्ध हो जाता है। मन के तीन रूप हैं

(1) तमोगुणी मन - जो हमेशा बुराई की तरफ़ ले जाता है।

(2) रजोगुणी मन - जो कभी अच्छाई और कभी बुराई की तरफ़ ले जाता है, और

(3) सतोगुणी मन - जो हमेशा अच्छाई की तरफ़ लगाये रहता है।

मन की दो तरह की वृत्तियाँ होती हैं - एक, मलिन वृत्ति, और दूसरी शुद्ध वृत्ति। मलिन वृत्ति भेद-भाव पैदा करती है - मेरा लड़का, दूसरे का लड़का, मेरा घर, तेरा घर, मेरी दुनियाँ, दूसरों की दुनियाँ, मैं आदमी हूँ, यह पेड़ है, जानवर है, इत्यादि, इत्यादि। शुद्ध वृत्ति पैदा होने पर ये सब बातें चली जाती हैं लेकिन यह बहुत ऊँची अवस्था है जिससे मन शुद्ध होकर आत्मा में लय हो जाता है। उसका मिथ्यापन चला जाता है।

इसके बाद तीसरी चीज़ आती है जिसे 'मार्फत' कहते हैं। इसमें बुद्धि शुद्ध हो जाती है। बुद्धि दो प्रकार की होती है - एक 'परा' और दूसरी 'अपरा'। जो ख़्यालात और सोच विचार दुनियाँ और उसके सामान के बारे में आते हैं वे सब 'परा' बुद्धि के द्वारा होते हैं। जो विचार ईश्वर चिन्तन से सम्बन्ध रखते हैं वे सब 'अपरा' बुद्धि के कारण होते हैं। बुद्धि शुद्ध हो जाने पर विवेक की प्राप्ति होती है। 'मैं कौन हूँ, कहाँ से आया, यह दुनियाँ क्या है, मेरा इससे क्या सम्बन्ध है, ये सूरज, चाँद और सितारे किसने बनाये, सितारों से भरपूर यह आसमानी चादर किसने बनाई, यह रंग-बिरंगे

फूल, यह चहचहाती चिड़ियाँ, यह झरनों का राग, यह बर्फ़ से ढँके पहाड़, ये हरे-भरे जँगल, ये ख़ूबसूरत बच्चे, यह मख़लूक़ किसने बनाया ? कौन है वह ख़ूबसूरत परी जिसने इन्हें सजोया, कौन है वह कुशल कारीगर जिसने इन्हें बनाया, जो इनका मालिक है ? जब यह इतने ख़ूबसूरत, मनमोहक हैं तो इनका बनाने वाला ख़ुद कैसा होगा ? यहाँ से सोच-विचार करते-करते हैरत (आश्चर्य) के मुक़ाम में आ जाता है, जहाँ बुद्धि शान्त हो जाती है और अपना तर्क-वितर्क बन्द कर देती है।

हैरत दो प्रकार की होती है। एक हैरत महमूद (अच्छे क़िस्म की हैरत) जिसमें हुज़ूरी (ध्यान) हर वक़्त रहती है और एक ऐसी हालत आनन्द की पैदा हो जाती है जो बयान में नहीं आ सकती। यहीं पर आदमी आश्चर्यचकित हो जाता है और कह उठता है -'हैरत, हैरत, हैरत ' - 'वाह गुरु, वाह गुरु, वाह गुरु ' । यही विराट रूप का दर्शन है। दुनियाँ के सब काम बिना थोड़ा-सा भी ख़्याल किये होते जाते हैं और उनमें ज़रा सी भी परेशानी नहीं होती। ज़्यादातर वक़्त सोज़ोतड़प (प्रेमावेश) में गुज़रता है, इसमें अपने आप से बेख़बर नहीं होता, हर चीज़ पर क़ाबू रहता है। दूसरी हैरत मज़मूम (बुरी क़िस्म की हैरत) होती है। इसमें और सब बातें तो हैरत महमूद की तरह होती हैं लेकिन किसी तरह का आनन्द और हर हालत की अपने को ख़बर नहीं होती। ऐसे लोगों को मजज़ूब (खिंचा हुआ) कहते हैं। दुनियाँ का कोई भी काम इसमें अक़्लमन्दी के साथ नहीं होता। लोग ऐसे आदमी को पागल समझने लगते हैं।

इससे अगली हालत जब आती है उसे 'हक़ीक़त' कहते हैं। जो आत्मा द्वारा जाना जाय, जिसका अनुभव आत्मा में हो, जहाँ इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि सब पीछे रह जायें, वहाँ केवल एक शुद्ध आत्मा रहती है और वही अपने प्रीतम का साक्षात्कार करती है। प्रकृति की सारी चीज़ों में से उसे वही एक प्रीतम झाँकता हुआ दिखाई देता है और उसका हृदय इतना विशाल हो जाता है कि सारी दुनियाँ के

लिए उसमें जगह हो जाती है। उस परमात्मा के सर्वत्र और और सब में रमे होने का उसे साफ़ - साफ़ भास होने लगता है। सारा विश्व मेरा ही बन्धु है - ऐसी भावना उसमें जाग जाती है। संसार के किसी भी कोने में हुए सभी अवतार, पैगम्बर, देवदूत, उसे एक ही बात कहते हुए सुनाई देते हैं। उनकी भाषा भले ही अलग-अलग हो, लेकिन उसे सुनाई सब एक सी ही देती है, और वह सबका एक ही अर्थ समझता है। यही हक़ीक़त का जानना है। इसी को आत्म दर्शन कहते हैं। इस स्थान पर आकर भेद -भाव, मज़हब सब नीचे रह जाते हैं। सूफ़ी इस जगह कहता है - " ओ मुसलमानों। कहो कि हम एक ही ईश्वर में विश्वास रखते हैं, जो अब्राहीम, इस्माईल, मूँसा, ईसा, मौहम्मद आदि सभी पैगम्बरों में प्रकट हुआ था, क्योंकि हम उनमें से किसी में अन्तर नहीं देखते।"

आधुनिक युग में <u>परमसन्त महात्मा रामचन्द्र जी महाराज (फ़तेहगढ़ निवासी</u>) भी ऐसे ही विशाल हृदय के महापुरुष हुए हैं जिन्होंने मुस्लिम सूफ़ी सन्तों की वंश परम्परा को नज़दीक से देखा और उसे अपनाया। इनका अध्ययन करने पर उन्होंने यह जाना की भले ही यह मत हज़रत मौहम्मद से चला हो लेकिन इसमें और हिन्दुओं के वेदान्त में कोई अन्तर नहीं है। फ़र्क़ है तो सिर्फ़ शरीयत में है। सूफ़ी मुसलमान शरह को मानते हैं, क्योंकि वे वैसे मुल्क में पैदा हुए। वेदान्ती हिन्दू कर्मकाण्ड को मानते हैं क्योंकि वे वैसे देश में पैदा हुए। किन्तु इससे हक़ीक़त या वास्तविकता थोड़े ही बदल जाती है। ईश्वर तो वही है जो सबका एक है। <u>अतः उन्होंने एक ऐसी नवीन और अद्भुत प्रणाली को जन्म दिया जिसमें इस्लाम के सूफ़ी मत और हिन्दुओं के वेदान्त का समन्वय है, और वह है आपका सत्संग</u>। जहाँ तक कर्मकाण्ड का ताल्लुक़ है, जहाँ तक शरीयत है, मन का साधना (तरीक़त) और बुद्ध की शुद्धि (मारफ़त) का सम्बन्ध है, हमारा तरीक़ा सनातन है। हमारे वही तरीक़े हैं जिन पर पुराने ऋषि मुनि चलते आये हैं और जिनका हिन्दू शास्त्रों में वर्णन है। और जहाँ तक आत्म दर्शन का ताल्लुक़ है, हमारी परम्परा सूफ़ी है। हम सब उन सब विगत मुस्लिम और

हिन्दू महापुरुषों से दुआ करते हैं और उनसे हमें सदा मदद मिलती है जो इस वंश परम्परा में हुए हैं। सब अवतार या पैग़म्बर - चाहे वे किसी देश में हुए हों और चाहे वे किसी मज़हब से ताल्लुक़ रखते हों - चाहे वे राम हों या कृष्ण, मौहम्मद हों या ईसा, या और कोई, हमारे लिए सब एक समान आदरणीय हैं। भले ही उन लोगों ने अलग-अलग रास्ते ईश्वर-प्राप्ति के लिए बनाये हों, पर वे सभी रास्ते उसी लक्ष्य पर पहुँचते हैं, जो लक्ष्य सबका एक है। जहाँ तक सदाचार का सम्बन्ध है, सभी कहते हैं - सच बोलो, नेक काम करो, नेकी पर चलो, बुराई से बचो, दीन दुखियों की सेवा-सहायता करो, सब में एक ईश्वर का ही रूप देखो।

क़ुरआनशरीफ़ में लिखा है - ईश्वर श्रष्टि का कर्त्ता है (Allah is the Creator of all things, and He is One the Almighty)। वह एक है, उसके सिवाय दूसरा कोई परमात्मा नहीं (There is no God save Him – the Alive, the Eternal) वह नित्य और सर्वशक्तिमान है (Allah is the Absolute, clement), पथ प्रदर्शक तथा संरक्षक भी वही है। वह इष्ट, श्रोता और साक्षी है। वह स्वतः पूर्ण है। (Allah is Hearer, Knower) वह सबमें रमा हुआ है, सर्वज्ञ है (He is Alll Embracing, All Knowing), न उसका आदि है और न अन्त (He is the First and the Last), वह सर्वोच्च सत्ता है जो अप्रत्यक्ष भी है प्रत्यक्ष है। विश्व का कण-कण उसी का प्रदर्शक है। वह सर्वोत्कृष्ट और समृद्धिवान है, विजेता है और महान है। संसार का सबसे बड़ा हितकारी और श्रेष्ठ न्यायकारी भी वही है। सारे पदार्थ उसी से उत्पन्न हुए हैं और अन्त में उसी को चले जायेंगे। (Unto Allah belongeth whatsoever is in the Heaven and whatsoever is in the Earth, and unto Allah all things are returned) जो उसमें विश्वास करते हैं और सन्मार्ग पर चलते हैं वे आनन्द का उपभोग करते हैं - (Those who believe and do right, joy is for them, and

bliss their journey's end) इनमें से कोई ऐसी बात नहीं है जो हिन्दू धर्म ग्रंथों में न हो। भेद भाव की बात ही कौन सी है ?

अगर कोई चाहे कि समुद्र को लोटे में भर लूँ तो यह नामुमकिन बात है। वह अपार और अथाह समुन्द्र भला लोटे में कैसे आ सकता है ? फिर वह परमात्मा, जो सारी श्रष्टि का रचयिता है, सम्पूर्ण रूप से कैसे जाना जा सकता है। उसका न आदि है न अन्त। अगर कोई चींटी हाथी को देखने चले तो उसे सारा कैसे जान सकती है ? कोई पैर पर रेंग कर यह मालूम कर लेगी कि हाथी खम्बे की तरह है, कोई कान पर चढ़ जाये तो उसे सूप की तरह बताएगी। इतने बड़े हाथी का सम्पूर्ण ज्ञान एक चींटी को नहीं हो सकता। इसी तरह मनुष्य को परमात्मा का सम्पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता। जिस महापुरुष ने जितना अनुभव किया उतना उसने बता दिया। अपने-अपने अनुभव के लिए सबने अलग-अलग रास्ते अपनाये, मगर लक्ष्य सबका एक ही रहा।

हमारे यहाँ का रास्ता सबसे सरल और सीधा है। यह प्रेम का रास्ता है। सब अवतार और पैग़म्बर हमें प्यारे हैं लेकिन रास्ता हमारा वह है जो हमारे वंश के महापुरुषों ने दिखाया है। सबकी नसीहत अच्छी हैं। सब में से अच्छाई छाँट लो (Take good from all), अगर किसी की कोई चीज़ तुम्हें अच्छी नहीं लगती, तुम्हें पसन्द नहीं आती, तो उसकी बुराई मत करो। प्रेम का रास्ता सबसे छोटा और सरल रास्ता है।

हमारा मत विशाल हृदयता सिखाता है। घर वालों से प्रेम करो, पड़ोसियों से प्रेम करो, मुल्क़ वालों से प्रेम करो, दुश्मन से भी प्रेम करो और जीव-मात्र, बनस्पति, स्थावर-जंगम, सबसे प्रेम करो। सबमें एक ही परमेश्वर समाया हुआ है जो प्रेम का भण्डार है। वही हमारा सच्चा गुरु है। सबसे प्रेम करते हुए तुम भी एक दिन प्रेम रूप हो जाओगे और अपने प्रियतम परमात्मा में समां जाओगे। लेकिन ऐसा करना बहुत कठिन है। हर एक से अपने बलबूते पर ऐसा नहीं बन सकता।

तो फिर किसी ऐसे महापुरुष का सहारा लो जो इस रास्ते पर चल चुका हो। केवल इतना करो कि संसार भर की चीज़ों में जो तुम्हारा प्रेम बंटा हुआ है, उसे समेट कर उसके चरणों में लगा दो। यही गुरु धारण करना है। बिना रहवर को साथ लिए, बिना गुरु धारण किये, रास्ता तय नहीं होगा। निर्गुण का ध्यान कैसे हो सकता है ? इसलिए उस महापुरुष की शरण लो जिसने ईश्वर का साक्षात्कार कर लिया है। उसका स्थूल शरीर मन्दिर है जिसमें निर्गुण परमात्मा विराजता है। उससे प्रेम करने से, उसका ध्यान करने से, तुम्हें भी आत्मदर्शन होगा। इसलिए हमारे यहाँ के तरीक़े में गुरु धारण करते हैं। गुरु की पूजा को ही मुख्यता देते हैं। गुरु और ईश्वर को दो नहीं मानते।

किसी महात्मा ने अपने शिष्य से पूछा - " तू मुझे क्या समझता है ?" उसने उत्तर दिया - " मैं आपको ईश्वर की जगह समझता हूँ।" महात्मा ने कहा - " यह कुफ्र है, तू मुझे ही परमात्मा क्यों नहीं समझता।" गीता में स्वयं भगवान ने कहा है -

आचार्य मां विजानीयात नाव मन्यते किहिंचित।

न मतरय बुद्धयासूते सर्व देवोमयो गुरुः ॥

(अर्थ - आचार्य को मेरा ही रूप समझना चाहिए और उनको कभी भी ईश्वर से अलग जानकर अपमानित नहीं करना चाहिए। मनुष्य बुद्धि से उनके गुण-दोष का विचार नहीं करना चाहिए। गुरु सर्वदेवमय होता है।)

पहले गुरु को ईश्वर का रूप समझो और अपने आपको उसमें लय कर दो। और जब आदि-पुरुष परमेश्वर के दर्शन हो जायें जो उसमें निवास करता है, तो फिर ईश्वर ही गुरु नज़र आने लगेगा। पहले सगुण ईश्वर की उपासना गुरु-रूप में की जाती है और उसके द्वारा गुरु में लय हो जाने पर ईश्वर के दर्शन निर्गुण रूप में होते हैं।

शरण की महिमा

(गाज़ियाबाद – ३-११-१९६९)

सत्संगी को चाहिए कि वह सत्पुरुष दयाल परमात्मा, जो असली भण्डार हैं, उसके चरणों को दृढ़ता से पकड़े और उनको सर्वसमर्थ और सबका प्रेरक जाने। जो भी काम वह करे उसके फल की आशा न रखे, उसे मालिक की मौज़ पर छोड़ दे। कोई काम करने से पहले अपनी बुद्धि से ख़ूब सोच-समझकर विचार कर ले। इससे बुरे का निषेध तो पहले ही हो जायेगा। वह बुराई से बच जायेगा। और, जब वह यह समझ ले कि इसका नतीज़ा अच्छा निकलेगा, तभी उस काम को करे। इतना करना तो उसके हाथ में है, लेकिन जैसा फल उस काम का उसने सोच रखा है, वैसा फल मिले या न मिले, यह उसके हाथ में नहीं है। यह उस सर्व समर्थ और कुल मालिक के हाथ में है. इसलिए फल उसकी मर्ज़ी पर छोड़ दे। लड़का बीमार है तो अपनी हैसियत के मुताबिक़ इलाज हरेक कराता है और उस इलाज के फलस्वरूप आशा रखता है कि वह लड़का अच्छा हो जायेगा। इतना करना उसके हाथ में है और यह उसका कर्तव्य है। पर लड़के का अच्छा होना या न होना यह मालिक के अख़्त्यार (अधिकार) की बात है। दुःख तब होता है जब हम किसी काम के नतीज़े पर निगाह (दृष्टि) रखते हैं। जैसा नतीज़ा हम चाहते है अगर वैसा नहीं होता तो हमें दुःख होता है। इसलिए जैसी परमात्मा की मौज़ हो उसी में राज़ी रहें और जितना बन सके भजन, सुमिरन, ध्यान तथा महापुरुषों की वाणी का पाठ करें। सत्संग करें और दीन-दुखियों की, बड़ों की और गुरुजनों की सेवा करें। यह दृढ़ विश्वास अपने मन में रखें कि मालिक दयालु है, वह हमेशा मेरे लिए अच्छा ही करेगा। इस भावना को लेकर अगर कोई संसार में व्यवहार करे तो गुज़ारा मुमकिन (सम्भव) है।

यह अच्छी तरह समझ लो कि जो भी काम करो, अगर उसका फल मालिक की मौज़ पर छोड़ दोगे तो बन्धन नहीं होगा. कर्म करते हुए अकर्ता हो जाओगे। संचित कर्म धीरे-धीरे कट जायेंगे। आयन्दा (भविष्य) के लिए कर्म भार नहीं चढ़ेगा यानी किर्यमाण कर्म नहीं लगेंगे और प्रारब्ध कर्मों की भी ज़ोर बहुत कम हो जायेगा। इस तरह सतगुरु के चरणों का सहारा लेकर, सत्पुरुष दयाल के चरणों का लक्ष्य बाँधकर और पक्का इरादा करके कि पहुँच कर ठहरूँगा तो वहीं ठहरूँगा, ऐसा अभ्यास करेगा और दिन-दिन अपनी प्रतीत गुरु चरणों में बढ़ायेगा तो संसार की तरफ़ से चित्त उपराम होता जायेगा, और आत्मा ऊपर उठती जायेगी और मन के बन्धनों से मुक्त होने लगेगी। इस तरह करने से एक या दो जन्मों में ही धुर धाम तक पहुँचना मुमकिन है। चाहे जन्म दो की बजाय तीन, चार या ज़्यादा भी लग जायें मगर जो जन्म इसको अगला मिलेगा वह वर्तमान जन्म से अच्छा होगा. परमार्थी कमाई ज़्यादा बनेगी और दुनियाँ में भी सुख मिलेगा। अगले जन्म में सतगुरु की प्राप्ति उसे ज़रूर होगी (चाहे किसी रूप में हो), और उसके थोड़े समय के सत्संग से, उस जन्म की कमाई खुल जायेगी। जितने दिन शरीर छोड़कर देह धारण करने में लगेंगे, उतने समय तक ऊँचे स्थान में रहेगा, और सतगुरु के दर्शन और वचन मिलेंगे। इस तरह हर अगले जन्म में सतगुरु के दर्शन और वचन मिलेंगे और उनकी कमाई करता जायेगा। मरने और नया जन्म लेने में किसी तरह का हर्ज़ और नुक़सान नहीं है, बल्कि ख़ुशी की बात है, कि काम पूरा हो और धुर-धाम में निवास पावें।

जो इस तरह पूरी शरण लेगा उसका एक ही जन्म में, इसी जन्म में, उद्धार मुमकिन है। जिसकी शरण में कमी है उसे अपनी कमाई के अनुसार एक या अनेक जन्म लेने पड़ेंगे। मगर शरण लेने में इस बात का जरा भी ख़्याल न रखे कि कितने जन्म लेने पड़ेंगे। चरणों को दृढ़ करके पकड़े यानी नतीज़े पर ध्यान न रखे। मालिक की मर्ज़ी, जब जी चाहे पास बुला ले। चाहे

इस जन्म में और चाहे किसी अगले जन्म में। अपने को उसकी शरण में पूरी तरह पेश करके ढ़ीला छोड़ दे।

जिस तरह सुरत इस देह में विभिन्न चक्रों में बैठकर, अपनी धार की ताक़त से कुल कार्यवाही उस देह की कराती है, उसी तरह सत्पुरुष दयाल जो सब सुरतों को शक्ति देने वाले और प्रेरक हैं, हरेक के घट में मौजूद हैं। वे सर्वसमर्थ हैं। जो अपने ही घट में विराजमान हैं, उनसे प्रीत और प्रतीत करने में कोई दिक़्क़त नहीं होनी चाहिए। लेकिन मन ऐसा होने नहीं देता। वह अपनी चतुराई और तदबीर से मालिक का पूरा-पूरा भरोसा, जैसा होना चाहिये, वैसा होने नहीं देता। इसका कारण यह है कि जिस काम को करने के लिए उसको सुपुर्द किया है, उसे पूरे भरोसे के साथ नहीं करता। उसमें अपनी अक़्लमंदी और तदबीर ज़रूर अड़ा देता है, और चाहता है कि वह काम उसकी मर्ज़ी के मुताबिक़ हो। अगर इसके मुताबिक़ नहीं होता तो दुःखी होता है और सोचता है कि अगर मैं अमुक उपाय करता तो काम ठीक हो जाता, या अमुक बात में कसर रह गयी। उसको मालिक की मौज़ नहीं समझता। जो ऐसे मन हैं वे पूरी तरह शरण में भरोसा नहीं रखते। उन्हीं को मनमत कहते हैं। वे परमात्मा से विमुख हैं।

तक़दीर और तदबीर दो चीज़ें हैं। तक़दीर वह है जो हमारे पिछले कर्म हैं जिनके मुताबिक़ तुम्हें यह ज़िन्दगी मिली है। तक़दीर ही ऐसे वातावरण में और ऐसे माँ-बाप के यहाँ हमें पैदा करती है, जहाँ पिछले जन्मों का क्रम चलता रहे। एक ही घर में कई बच्चे पैदा होते हैं। वे जैसे-जैसे बड़े होते जाते हैं उनके स्वभाव और कर्म न्यारे-न्यारे होते जाते हैं। यह तक़दीर का विस्तार (manifestation) है। जैसे-जैसे उनके मन का विकास होता जाता है, दुनियाँ का प्रभाव उस पर पड़ने लगता है और आत्मा की रौशनी पाकर पिछले कर्म जाग्रत अवस्था में आ जाते हैं। इस तरह फिर वही कर्म करने में लग जाता है जो पिछले जन्मों में करता रहा है और जो उसकी आदत है.

किसी दरख़्त के बीज को अगर पानी, हवा, धूप वग़ैरा न मिले तो वह उग नहीं सकता और न परवरिश पा सकता है, और न उसमें फल आ सकते हैं। बीज तक़दीर है, उसे जब वातावरण ठीक मिलता है तब वह उगने लगता है, धूप, पानी वग़ैरा दुनियाँ के प्रभाव पाकर वह उगने लगता है और फिर उसमें फल आता है। यही कर्म फल है। बच्चा पैदा होता है, दुनियाँ का वातावरण पाकर उसके पिछले कर्म उदय होते हैं, और उनमें वह व्यवहार करता है। फिर उन कर्मों का फल मिलता है। यह सब तक़दीर का दायरा (घेरा) है। तदबीर के ज़रिये (द्वारा) इन्सान अपनी तक़दीर को बदल सकता है। जिन बातों को वह अपनी पिछली ज़िन्दगी में पूरी तरह हासिल न कर सका, वे इस ज़िन्दगी में ज़रा सी कोशिश करने से हासिल हो सकती हैं। जतन और जुस्तजू (पुरुषार्थ) चाहिये। हर काम का फल ज़रूर मिलता है। अच्छे काम का अच्छा और बुरे काम का बुरा, मगर देने वाला सतपुरुष दयाल है। उससे दुनियाँ माँगोगे, दुनिया मिलेगी, दीन माँगोगे दीन मिलेगा। उससे उसको माँगोगे, मिलेगा। मगर हर चीज़ की क़ीमत देनी पड़ती है। अगर उस प्रभु को पाना चाहते हो तो अपने को ख़त्म कर दो। जीते जी मरना पड़ेगा। ऐसा किस तरह हो ? इसके लिए तीन बातें ख़ास हैं :-

(1) Character Formation - यानी इख़लाक़ (चरित्र) सुधारना - सच्चाई को क़बूल (ग्रहण) करो, बुराई को छोड़ते चलो। बुराई को छोड़कर नेकी पर आ जाओ। जो सोचो, अच्छा ही सोचो। जो करो, अच्छा ही करो। अपनी इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि को शुद्ध करके discipline (अनुशासन, नियंत्रण) में लाओ। बुद्धि ईश्वर में लीन हो, यानी बुद्धि की सलाह से काम करें। इन्द्रियाँ मन की मातहती में काम करें।

(2) Cooperate with the Mother - यानी प्रकृति माँ के साथ मिल कर चलो। यह दुनियाँ और इसके सामान, लड़के-बाले, स्त्री, कुटुम्बी, दोस्त-अहबाब - सब प्रकृति माँ का रूप हैं। उनसे

मिलकर चलो, लेकिन अपने को उनसे अलहदा समझो। कोई हमेशा नहीं रहेगा। लड़का पैदा हुआ है, मरेगा ज़रूर। फिर इससे मोह क्या ? इस तरह विवेक से बन्धन ढ़ीले करते चलो। अपने कर्तव्य पूरे करो, और अन्दर से सबसे अलग। सिर्फ़ एक मालिक सत्पुरुष दयाल को ही अपना समझो और उसी से प्रेम करो। सब प्राणी मात्र की सेवा करो। जो काम भी दुनियाँ का करो, अपने आनन्द के लिए मत करो, बल्कि ईश्वर का समझकर उसको ख़ुश करने के लिए करो। यही detachment (अलग होना) है, यही अभ्यास है। उसको duty sake (कर्तव्य समझकर) करो। यही माँ के साथ मिलकर चलना है । आनन्द के लिए ईश्वर का नाम लो, उसका ध्यान करो।

(3) तीसरी चीज़ है सन्तों की सौह्बत (सत्संग) । महापुरुषों की सौह्बत करो। उनके सत्संग से लाभ उठाओ। गुरु के वाक्यों को ब्रह्म-वाक्य समझकर उन पर अमल (अभ्यास) करो। उनके चरणों में प्रेम पैदा करो और अपने आपको मेट दो। आगे चलकर यही प्रेम ईश्वर प्रेम में तब्दील हो जायेगा।

गंगा का जल कितना पवित्र है। कभी सड़ता नहीं है। मगर किसी तरह अगर यह दूर जा पड़े और बीच में एक मेड़ सी बन जाये तो उसे गड्ढे का पानी कहते हैं, वह गंगा से अलग हो जाता है, सड़ने लगता है। तुम भी गंगा के पानी हो लेकिन गड्ढे में पड़े सड़ रहे हो क्योंकि मेड़ बीच में बन गयी है। तुम उसी सत्पुरुष दयाल का अंश हो जो सर्वशक्तिमान है, सर्वव्यापी है, लेकिन मन की वजह से, मेरे-तेरेपन की वजह से तुम्हारे और उसके बीच में एक मेड़ बन गयी है। उसको तोड़ दो, तुम और वह एक हो। यह बिना गुरु की शरण लिये, बिना उसके वाक्यों पर अमल किये और बिना सत्संग के नहीं होगा। जो चीज़ ईश्वर से अलहदगी (दूर) करे, जो मालिक से दूर ले जाये, उसे त्याग दो। कोई भी कर्म जो मालिक से दूर ले जाये, 'पाप' है, जो कर्म मालिक से नज़दीकी हासिल करने में सहायक हो वही 'पुण्य' है।

दुनियाँ से तरने का साधना

(गोरखपुर-दिसम्बर १९६९)

जब से इन्सान दुनियां में आता है, उसी वक्त से उसका संग्राम प्रारम्भ हो जाता है । संसार में दो तरह की ज़िन्दगियां हैं - एक मन की, और दूसरी आत्मा की । शुरू-शुरू में आदमी अज्ञानवश अपने आपको जिस्म (शरीर) समझता है, और जिन चीज़ों से जिस्म को सुख मिलता है उन्हें पाने की कोशिश करता है । जिनसे दुःख मिलता है, उन्हें हटाने की कोशिश करता है । इन्हीं चीज़ों के पाने और हटाने की ख्वाहिश 'काम' है । 'काम' के वश होकर इन्सान कर्म करता है । शुरू में मन की ख्वाहिशात (वासनाओं) के मुताबिक हमें ज़िन्दगी में संग्राम करना पड़ता है । जिस चीज़ से हमें सुख मिलता है, उससे प्यार हो जाता है । उन चीज़ों के हासिल करने में बराबर कोशिश करनी पड़ती है। जिन चीज़ों से दुख मिलता है, उन चीज़ों के दूर करने को भी मेहनत करनी पड़ती है । इस तरह मन की दुनिया में हमेशा संग्राम चलता ही रहता है । जिन चीज़ों को हासिल कर लेते हैं, उनको अपने साथ बनाये रखने में भी मेहनत करनी पड़ती है, और जिन चीज़ों को दूर कर देते हैं उनको बराबर दूर रखने के लिए भी मेहनत करनी पड़ती है। फिर भी मन किसी चीज़ को हासिल करने पर भी शान्त नहीं होता, हमेशा उसे बढ़ाने में लगा रहता है । जो इच्छा पैदा होती है और जो चीज़ मिल भी जाती है उससे उसको शान्ति नहीं मिलती । उस चीज़ की हविस (चाहना) रोज़-ब-रोज़ बढ़ती ही जाती है। एक चीज़ हासिल हो जाती है तो मन दूसरी चीज़ हासिल करते को जतन करता है। उसके हासिल हो जाने पर ओर दूसरी चीज़ों की चाह उठाता है । इस प्रकार चाह पर चाह उठाता रहता है, और हमेशा द्वन्द में फंसाये रखता है । मरने पर भी शान्ति नसीब नहीं होती। आदमी के मर जाने के बाद भी ये दुनियां को ख्वाहिशात (इच्छायें) आत्मा को अपने जाल में फंसाये रहती हैं और ऐसे वातावरण में जहां ख़्वाहिशात पूरी हो सकती हैं, उन ख़्वाहिशात की कशिश

से, उसी जगह पैदाइश होती है । कुछ पिछली ख्वाहिशात पूरी होती हैं, और हज़ारों नई इच्छायें श्रौर भी पेदा हो जाती हैं। इस तरह इन इच्छायें का जाल बढ़ता ही जाता है। उसका अन्त ही नहीं होता । यही भवसागर है, जिसमें हर प्राणी फेंसा है, और निकलने नहीं पाता । यही आवागमन का जाल है । इस भवसागर और आवागमन से निकलने का बस एक ही जरिया (उपाय) है, जो ईइ्वर ने बड़ी कृपा करके जारी किया, और हमेशा जारी रहेगा । इन्सानों की ऐसी मुसीबत, और बेबसी को देखकर ईदवर के प्रेम और दया की लहर उमड़ती है, और जोश में आती है, और तब वह इन्सानी चोला धारण करके सन्त रूप में पेदा होती है । जो मनुष्य दुनियां की तक़लीफ़ों को देखकर तजुर्बा हासिल करके यहाँ से निकलना चाहते हैं, उनको अपना बल देता है, उनकी देख भाल करता हैं, उनको बुराइयों से निकालकर सच्चे रास्ते पर डालता है, और इस तरह उनकी परवरिश (पालनपोषण) करता हुआ, मुसीबतों से बचाता हुआ, सच्चा रास्ता दिखाता हुआ, उस पर क़ायम रहने की ताक़त देता है । उन जीवों को हमेशा-हमेशा के लिए भवसागर से पार कर देता है. ; परन्त माया जो ईश्वर की खुद शक्ति है, इस तरह जीव को पार नहीं जाने देती । वह हर क़दम पर रोड़ा अटकाती है, और सदा इस कोशिश में रहती है कि जीव उसके पंजे से निकल कर बाहर न जाने पावे । जितना इन्सान बढ़ता जाता है उतनी ही माया की तरफ़ से रुकावट भी बढ़ती जाती है । इन शक्तियों का मुक़ाबला न कर सकने के कारण बहुत ते जीव रास्ते ही में रह जाते हैं, और माया उनको फिर खा लेती है। अगरचे (यद्यपि, पुरानी कमाई ग़ारत (नष्ट) नहीं हो जाती, लेकिन कुछ अरसे (काल, समय) के लिए तरक्की झुक जाती है । जिस जगह पर जीव खड़ा है, और जहाँ पर उसको पहुंचना है उसके बीच हज़ारों ही माया की मन मोहक चीजें हूँ, जो एक से एक ज्यादा लुभाने वाली हैं। जब मन किसी एक ख्वाहिश में फंस जाता है, तो उसी को लक्ष्य समझने लगता है, और उसी में फंसकर रह जाता है । इस तरह से हज़ारों ही बार गिरता है, और फिर उठता है। जहां तक देखने में ग्राया है, शायद ही कोई ऐसा जीव हुआ हो, जिसको दुनिया (माया) ने एक बार धक्का

न दिया हो, और पीछे न फेंक दिया हो । फिर ऐसा क्यों न हो ? यह माया, यह दुनिया बड़ी ताक़तवर (शक्तिशाली) हैं क्योंकि परमात्मा की शक्ति हैं । अगर एक शक्ति मनुष्य को सन्त रूप में निकालने को आती हैं, तो ईश्वर की दूसरी शक्ति महाकाली के रूप में उसके बीच में रुकावट भी डालती हैं ।

इस चक्कर से निकलने का सिर्फ एक ही रास्ता हैं, कि सन्तों के बतलाये हुए रास्ते पर सख्ती के साथ चले । उनका बराबर संग करता रहे । गुरुओं की बानी का पाठ फरता रहे । जो गुरुजनों ने कहा हैं उसी को सच माने और अपने मन की बात को सही न मान कर उसके जाल से बचा रहे । अगर अपनी बुद्धि पर ऐतबार करेगा, जो अभी तक शुद्ध नहीं हुई हैं तो और अधिक मन के जाल में फंस जाएगा और उससे निकलने की कोशिश न करेगा । सम्भव हैं इस तरह उसके दो चार जन्म अकारथ हो जाएँ और वह इसी भवसागर में फंसा रहे ।

गुरु सब कल्याण करें ।

राजी-ब-रजा

(यथा लाभ सन्तोष)

बरेली ता० २८-८-६८

ईश्वर दयालु है । उसकी कृपा हर समय सब पर होती रहती है । वह हमेशा हम सब का कल्याण चाहता है । लेकिन उसकी हर एक कृपा को हम सब अपने मन की तराजू पर तौलते हैं । अगर उसकी कृपा हमारे मन के मुताबिक हुई तो हम खुश होते हैं, जैसे किसी का बच्चा बीमार हो ओर वह ठीक हो जाय तो वह खुश होता है । अगर इसके विपरीत हो यानी बच्चा मर जाय या किसी तरह अपाहिज हो जाय तो वह उसे बर्दाश्त तो कर लेता है मगर मजबूरी और लाचारी के साथ । ऐसे मौके पर लोगों को कहते सुना गया है--"ईश्वर की ऐसी ही मर्जी थी ।" यह राज़ी-ब-रज़ा नहीं है। चाहे बच्चा मर जाय या अपाहिज हो जाय, या कोई और ऐसी ही मुसीबत आ जाये उसको उसी खुशी से बर्दाश्त करना चाहिये जैसे बच्चे की बीमारी के आराम आने में; यही असली राज़ी-ब-रजा है । दुःख या मुसीबत में आम दुनियादार परेशान होते हैं, परमात्मा पर दोष थोपते हैं। जो कोई उसमें विश्वास लाने लगते हैं - जैसे साधक या पन्थाई--वे उसे ईश्वर की मर्जी जानकर बर्दाश्त करते हैं और मजबूरी और लाचारी के साथ सब्र ले आते हैं । यह कच्चापन है और नीची हालत है है । सन्तों की राजी-ब-रज़ा यह है कि दुःख भी उसी ख़ुशी से बर्दाश्त करे जैसे सुख, यानी दोनों हालतों में एक समान खुश रहना । जब तक मन मालिक की मर्ज़ी के साथ अनुकूलता पैदा नहीं करता, असली राज़ी-ब-रज़ा की हालत नहीं आती | यह् दशा सन्तों के चरणों में बेठने और सत्संग लाभ करने से प्राप्त होती है । सन्तों में देवताओ को इष्ट नहीं मानते । देवता काल पुरुष के अतवार हैं । दुनियां और उनके सामान उनकी पूजा से मिलते हैं । लक्ष्मी की पूजा करने से धन की प्राप्ति होती हैं । सरस्वती की पूजा करने से विद्या की प्राप्ति होती है, वगैरा वगैरा । ब्रह्मा, विष्णु, महेश,

यह तीनों सबसे बड़े देवता हैं । भगवान राम और कृष्ण, दोनों विष्णु के अवतार हुंए हैं - इसलिये वे ही ज़्यादातर पूजे और बड़े माने जाते हैं। लेकिन वे एक ही ब्रह्माण्ड के मालिक थे। सन्त उस पारब्रह्म परमेश्वर को मानते हैं जो सारे सूर्य मण्डलों (solar systems) का मालिक है - सारे ब्रह्माण्डों की रचना जिसके एक इशारे का जलवा है, जो सर्वशक्तिमान है, जो न कभी पैदा हुआ और न कभी मरता है, जो हमेशा से है और हमेशा रहेगा | जितने भी ब्रह्माण्ड हैं वे सब काल के मातहत हैं यानी उनका वक्त मुकर्रिर है, प्रलय में समय सब नाश हो जाते हैं, और वक्त आते फिर से पैदा हो जाते हैं । इसी सिलसिले से हर एक ब्रह्माण्ड के देवता भी सृष्टि के साथ पेंदा होते और नाश होते रहते हैं । इसलिए इनकी उपासना से स्थायी मोक्ष नहीं मिलती | आवागमन जारी रहता है। उनकी मोक्ष प्रलय और महाप्रलय तक ही रहती है। जो सत्पुरुष में ही लय हो जाते हैं वे स्थायी हो जाते हैं और जब चाहते हैं संत रूप रख कर दुनियां में आ जाते हैं । सूफ़ी लोग भी इसी को लेते हैं । एक खुदा है और एक खुदाए अज़ीम | जो एक ब्रह्माण्ड का मालिक है वह खुदा है और जो सारे ब्रह्मांडों का मालिक है वह खुदाये अज़ीम है ।

दुनियाँ में ईश्वर के तीन रूप माने जाते हैं- ब्रह्मा, विष्णु और महेश - यानी पैदा करने वाला, पालन-पोषण करने वाला और विनाश करने वाला । ये दुनियाँ के चक्र को कायम रखते हैं, दुनियाँ से छुड़ाते नहीं । सन्तों में ईश्वर के दो रूप मानते हैं - (१) सगुण (२) निर्गुण । प्रकाश, शब्द, गुरु का स्थूल स्वरूप और जो कुछ आखों से दिखाई देता है वह सब ईश्वर का सगुण रूप हैं । प्रकाश और शब्द गुरु का स्थूल स्वरूप के मुक़ाबले में सूक्ष्म हैं । इसलिये जब तक प्रकाश या शब्द रूप का दर्शन नहीं होता तब तक गुरु के स्थूल स्वरूप का ध्यान करते हैं । और जब ईश्वर के असली रूप का दर्शन हो जाता है तब उसका ध्यान करते हैं । गुरु एक तरह से Medium (माध्यम) हैं । इसलिये .जब तक असली गुरु परमात्मा के दर्शन नहीं होते तब तक गुरु के स्थूल शरीर का अथवा

शब्द या प्रकाश का ध्यान करते हैं और उसमें लय हो जाते हैं। इस अवस्था को सूफियों में 'फ़नाफ़िल-शेख" कहते हैं । इस अवस्था को प्राप्त करने पर ईश्वर के निर्गुण स्वरूप का ध्यान आने लगता है । संतों में परमात्मा के निराकार स्वरूप को ही सर्वोच्च मानते हैं और गुरु में लय होने के बाद उसी निराकार परमेश्वर का ध्यान करते हैं । इश्वर गुरु रूप में आकर आवागमन के चक्कर से छुड़ाता है, दुनियाँ से हमेशा हमेशा के लिए निकालता है । जो लोग दुनियाँ चाहते हैं, उनको संतों से असली फ़ायदा नहीं होता । सन्त तो दुनियाँ उजाड़ते हैं, उसके बन्धन ढीले करते हैं । असली फ़ायदा उन्हें होता है जो दुनियाँ से उद्धार चाहते हैं ।

सन्तों में चार गुरु मानते हैं- (१) देहधारी गुरु, (२) शब्द गुरु (या प्रकाश गुरु) (३) प्रेम गुर, और (४) अनामी पुरुष । एक के वसीले (माध्यम) से दूसरे तक रसाई (पहुँच) होती है ।

आदमियों की अलग अलग प्रकृतियाँ क्यों होती हैं ? इसलिए कि जो हम पहले जन्मों में करते चले आये हैं वहीं हमारी आदत और प्रकृति इस जन्म में भी रहती है । कोई डाक्टरी पसन्द करता है, को क्लर्की पसन्द करता है, कोई प्रोफेसर बनना चाहता है, वगैरा वगैरा । पढ़ने में भी लड़के अलग-अलग प्रकृति के होते हैं - कोई प्रथम श्रेणी पहले ही ले लेते हैं, कोई कई साल रगड़ने पर भी पास नहीं होते | यह सब बातें पिछले जन्मों के संस्कारों के साथ-साथ आती हैं । जो पिछले जन्मों में करता आया है वही इस जन्म में भी करता है, लेकिन चूंकि उनमें कुछ सार नहीं पाता इसलिए उनसे छुटकारा पाना चाहता है | ऐसे लोगों को रास्ता दिखाने के लिए सन्त आते हैं । सन्त कोई जमात या सोसायटी बनाने नहीं आते । यह काम तो दुनियाँ वालों का है । सन्तों को इससे कोई ग़रज़ नहीं । वे दुनियाँ छुड़ाते हैं न कि उसमें फँसाते हैं ।

(जिस तरह सन्त बहुत कम हैं, उसी तरह अधिकारी भी बहुत कम हैं । जो मनुष्य सन्तों के पास आकर कुछ नहीं चाहता दुनियां की कोई चीज़ नहीं चाहता, सिर्फ अपने उद्धार के लिए उनकी

शरण ग्रहण करता है ऐसा आदमी अधिकारी है। ऐसे ही लोगों की तरफ सन्त रागिब (आकर्षित) होते हैं । दुनियाँ माँगने बहुत आते हैं । सन्तों को वे रागिब (आकर्षित) नहीं कर सकते ।

स्वामी विवेकानन्द जब पढ़ते ही थे तभी उनके पिता स्वर्गवासी हो चुके थे । घर के लोगों के पालन-पोषण का भार उनके ऊपर आ पड़ा । नौकरी की तलाश में दिन रात नंगे पैरों मारे मारे फिरते थे, लेकिन जहाँ जाते मायूसी और नाउम्मीदी (निराशा) उनका स्वागत करती थी । कई कई दिन तक खाना नसीब नहीं होता था । कमजोरी और थकान के कारण कभी कभी रास्ते में वेहोश होकर गिर पड़ते थे । मगर अपना हाल कभी दोस्तों को, यहाँ तक कि अपनी माँ और भाई-बहनों तक को नहीं बताते थे । जब शाम को घर आते तो उनकी माँ खाने के लिए पूछतीं । वे कहते 'मेरा पेट भरा है, दोस्तों के यहाँ खाना खा लिया था। मगर दरअसल वे भूखे होते थे ऐसा इसलिए कह देते कि घर पर पेट भर कर सबके लिए खाना नसीब न था। कोई और भूखा न रह जाय इसलिए खुद भूखे रहना पसन्द करते थे ।

उनके कुछ दोस्त दक्षिणेश्वर में स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी की सेवा में जाया करते थे। स्वामी जी की बहुत तारीफ सुनी थी । अपने दोस्तों से विवेकानन्द जी ने कहा कि मुझे भी बाबा के पास ले चलो। उनका मंशा यह था कि शायद बाबा नौकरी दिलाने में मदद कर सकें, माँ काली से दुआ कर दें । एक दिन उनके दोस्त उन्हें परमहंस जी के पास ले गये । हीरे की परख जौहरी ही जानता है । स्वामी रामकृष्ण ने देखते ही पहचान लिया कि यह व्यक्ति अधिकारी है और इससे दुनियाँ के लोगों का भला होगा। उन्हें बड़े प्यार से बिठाया । इस तरह वे वहाँ आने जाने लगे। आखिर विवेकानन्द जी ने अपनी दुःख भरी कथा कह सुनायी और परमहंस जी से प्रार्थना की कि वे माँ काली से दुआ कर दें कि नौकरी लग जाय। उन्होंने कहा कि अगर ऐसा न हुआ तो उनकी माँ और भाई-बहनों भूखों मर जायेंगे । वे (स्वामी जी) बोले---'मेरी तो ईश्वर सुनता नहीं ।

आपकी दुआा ख़ाली नहीं जायेगी । मेरे लिए कुछ कर दीजिये ।" बाबा मुस्कराये और कहा-"माँ आज मन्दिर में ही हैं, जा, उनसे रोटी माँग ले ।" स्वामी रामकृष्ण परमहंस की इस आज्ञा में कई भेद छिपे हुए थे - एक तो यह कि विवेकानन्द जी का माँ काली पर कोई विश्वास नहीं था; दूसरे यह कि वे ब्रह्म समाज को मानते वाले थे; तीसरे यह कि उनकी दुनियाँ छुड़ानी थी । परन्तु, जब विवेकानन्द मन्दिर में गये, देखा-माँ हँस रही थीं- प्रणाम किया और मन में आाया कि रोटी माँगें, लेकिन मुँह से निकला -"माँ प्रेम दीजिये ।"

माँ फिर मुस्करायीं । प्रणाम् करके वापिस चले आाये।

परमहंस जी ने पूछा

"माँग ली रोटी ।"

'नही ।'

"क्यों ?"

"ईश्वर का प्रेम माँगा ।"

उन्होंने कहा--"फिर जाओ, अभी माँ मन्दिर में ही हैं, उनसे जाकर रोटी मांगो ।"

बहुत मजबूत इरादा करके विवेकानन्द जी फिर माँ के पास गये, और इस बार भी उनके मूँह से यही निकला "माँ, प्रेम दो" । तीसरी बार फिर यही हुआ । माँगने गये रोटी माँग लिया प्रेम । माँ मुस्कराई और कहा- दिया" । विवेकानन्द बड़े खुश । वापंस आये । बोले--"मिल गया।" बाबा ने पूछा- क्या मिल गया ?" उन्होंने जवाब दिया--प्रेम, ईश्वर का प्रेम ।" फिर विवेकानन्द जी एकाएक उदास हो गये । उन्होंने समझ लिया यह बाबा ही मेरी बुद्धि को कुछ कर देते हैं । जाता हूं

रोटी माँगने, और माँग लेता हूँ ईश्वर का प्रेम । उन्होंने बाबा के चरण पकड़ लिए और बोले "आपने ही मेरी बुद्धि फेर दी । मेरे ऊपर कृपा कीजिए ।" बाबा ने कहा-"मैं तुझे दुनियाँ नहीं दुंगा - दुनियाँ के हज़ारों लाखों आदमियों की आत्मा उद्धार के लिए तड़प रही हैं, तेरा जन्म उन्हें जीवन देने के लिए हुआ है । अगर तू दुनियाँ में फंस जायगा तो हज़ारों प्राणी आत्मा के भोजन के लिए तड़पते रह जायगे। अगर तेरी माँ और भाई-बहन भूखे मर जाते हैं तो क्या, उसके मुकाबले में हजारों का भला होगा ।" जब विवेकानन्द जी बहुत रोये गिड़गिडाये तब उन्होंने कृपा करके फर्माया- "जा, सादा खाना और कपड़े की, तेरे घर वालों को कमी नहीं रहेगी ।" इस तरह स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानन्द को दुनियाँ नहीं दी, साथ ही उनके घर वालों की रोटी कपड़े का इन्तज़ाम भी कर दिया ।

कहने का मतलब यह है कि सन्त दुनियाँ में इतना तो दे देते हैं कि जिससे पेट भर जाय, जीवन निर्वाह हों जाय, मगर जो उससे ज्यादा प्रेम करते हैं उसका घर उजाड़ देते हैं कि गरूर (अभिमान) चला जाय। ओहदेदार की इज्जत खत्म कर देते हैं । उनकी शरण में तो वह आये जो अपनी दुनिया को आग लगा दे । इसलिए सन्त से दुनियाँ मत माँगो, उतना ही सिर्फ मांगों जितने में निर्वाह हो जाय । बाक़ी ईव्वर का प्रेम मांगो ।

राजी-ब-रजा चार क़िस्म की होती है। मजबूरी से किसी चीज को बर्दाश्त करना सबसे नीचे दर्जे की राजी-ब-रजा है। इससे ऊँची राजी-ब-रजा यह है कि यह ख्याल करके बरदाश्त करे कि बड़ी भारी तकलीफ आने को थीं पर ईश्वर की कृपा से छोटी शक्ल में आकर रह गई । यह दुसरे दर्जे की राजी-ब- रज़ा है जो पहली से बेहतर है । तीसरे दर्जे की राज़ी-ब-रजा मे यह ख्याल रहता है कि इस हालत के हो जाने से हमारे संस्कार कट रहे हैं और हमें परमात्मा क़ी नजदीकी प्राप्त होगी । इसलिये रूहानी फ़ायदे (आध्यात्मिक लाभ) को मद्दे नजर रख कर (बिचार को सामने रख

कर) उसको खुशी से बर्दाश्त करते हैं। चौथे दर्जे की और सबसे उत्तम राजी-ब-रजा यह है कि आई हुई तकलीफ़ को अपने प्रियतम परमेश्वर की तरफ़ से आई हुई सौगात (उपहार) समझ कर बरदाश्त करते हैं। किसी फ़ायदे पर निगाह नहीं होती। परमात्मा बड़ा दयालू है। उसकी दया हरेक जीव पर हर वक्त होती रहती है, लेकिन यह बड़ी नाजूक (कोमल) है। किसी मुख़ालिफ़त (विरोध) को 'बर्दाश्त नहीं कर सकती। अगर मन बीच में आ जाता है तो दया गुप्त हो जाती है। इसलिमे दया के लिये हर हालत में राजी-ब-रजा होना चाहिये।

सच्चे उद्धार का तरीका

गाजियाबाद ता० ४-११-६९

सन्तों ने भक्ति मार्ग को गुरुमत कहा है और जिस मार्ग में प्रेम और भक्ति नहीं है, उसे मनमत कहा है । भक्ति मार्ग की विशेष महिमा बताई है । भक्ति मार्ग दया (फज़्ल) और कृपा का मार्ग है । कोई कोई मत और सम्प्रदाय ऐसे भी हैं जहाँ कुछ भक्ति और प्रेम है लेकिन वहाँ सच्चे मालिक का पता देने वाला कोई नहीं है । मूरति पूजा और और देवताओं की पूजा के भ्रम में पड़े हुए हैं । सन्तों की भक्ति न्यारी है । उन्होंने उस भक्ति की महिमा की है जो सच्चे मालिक के चरणों में हो, जिस भक्ति के द्वारा अन्तर में अभ्यास कर के ईश्वर प्राप्ति हो सके । ऐसी भक्ति सतगुरु के सत्संग से प्राप्त होगी क्योंकि वे ही कुल मालिक का भेद देने वाले हैं ।

परमपिता परमेश्वर प्रेम के स्वरूप हैं । जितने ब्रह्म, पारब्रह्म और आात्मायें हैं सब प्रेम स्वरूप हैं, सतगुरु भी प्रेम स्वरूप हैं । बिना प्रेम के सच्चे प्रीतम से मेल नहीं हो सकता। आपस में प्रेम की मात्रा में फर्क है-जसे गंगा जल और उसकी एक बूंद - इसी तरह कुल मालिक प्रेम का स्रोत है, भण्डार है । सतगुरु प्रेम का समुद्र हैं, ब्रह्म और पारब्रह्म उसकी लहर हैं और जीव प्रेम की एक बूंद हैं। वह अपने स्रोत से अलग इसलिए हैं कि उसके साथ मन और माया लगी हुई है और जीव के साथ इच्छा लगी हुई है । इस कारण प्रेम पूर्ण नहीं है, दूषित हो गया है । सिन्धु यानी सतनाम पद में बहुत कम माया है जो सिन्धु के साथ एक रूप हो रही है, उसी में समाई हुई है, अलग उसका कोई रूप नहीं है । सतगुरु का स्थूल शरीर और उससे जो दुनियाँ के कर्म हो रहे हैं, वही उस माया के रूप हैं, लेकिन वह शरीर और उसके द्वारा किये गये कर्म प्रेम से परिपूर्ण हैं, अन्दर प्रेम, बाहर प्रेम, जहां जायें वहां प्रेम ही प्रेम है । माया की जो थोड़ी बहुत मिलोनी दिखायी देती है वह उस शरीर को

क़ायम रखने के लिए हैं । जो प्रेम का स्रोत है और असल भण्डार है वह सतपुरुष पद है और उसमें माया का नाम निशान भी नहीं है ।

अगर कोई इस बात का इच्छुक है कि उसका इस दुनियां से उद्धार हो तो प्रेम का रास्ता अपनाये और सच्चे मालिक का पता लगाए । ऐसे महापुरुष की तलाश सबसे पहले जरूरी है जो उस सच्चे मालिक के धाम का भेद जानते हो, जिसके द्वारा उस धाम तक पहुँचा आ सकता है । ऐसे महापुरुष ही सतगुरु कहलाते हैं । सन्त मत में इस बात की बहुत आसानी है । उसमें सुरत-शब्द-योग का अभ्यास कराया जाता है जो और बहुत से मतों के मुक़ाबले में कहीं आसान है । सुरत का जो फैलाव इस दुनियां में हो रहा है-उसे अपने ख्यालों के द्वारा समेट कर अन्तर में हो रहे शब्द को सुनने में लगावे । वास्तव में शब्द एक तरह गूंज (Vibration) है जो मनुष्य शरीर के शिरा केन्द्रों (Nervous system) पर हो रही है। प्रत्येक केन्द्र के शब्द की आवाज़ अलग अलग है उसको अलग अलग मतों में अलग अलग नाम दिये हैं । कोई उसे "ॐ" कहता है, कोई अल्लाह, कोई राम कोई सत्नाम वग़ैरा वगैरा। नाम कोई भी कुछ रख ले परन्तु यह निश्चित है कि वह गूंज उस सुरत की है जो दयाल देश से उतर कर हरके नर चोले में हरकत कर रही है । जैसे-जैसे ऊपर के मुकाम से नीचे को उतार होता गया और जिन झलग अलग घाटों (Nerve centre) पर ठहरी उसकी गूंज या आवाज की धुन भी बदलती गयी । कहीं घन्टे की सी आवाज़ है, कहीं मुरली की सी और कहीं वीन की सी। यहां पर आशय इससे नहीं है कि कैसी आवाज़ किस विशेष चक्र पर होती है । यहां सिर्फ़ ग़रज यह है कि उस गूंज में अपनी सुरत को लगाकर उसके सहारे ऊपर चढ़ने का अभ्यास करने से, बिना किसी कठिनाई के दयाल देश तक पहुँच सकता है जहाँ से शुरू में सब सुरतें निकलीं । सतगुरु का सहारा ज़रूर लेना पड़ेगा । बिना उसके सहारे के जीव की सामर्थ्य नहीं कि इस अभ्यास को अपनी हिम्मत के भरोसे पर कर सके । जब उस घाट पर सवारी करके चलता चला जायगा तो

बूंद पहले सिंधु में समा जायगी (यानी गुरु में लय होगा-जिसे सूफ़ियों में फ़नाफ़िल शेख कहते हैं) और इससे आगे चलकर झील में पहुँच जायगी । यानी अनामी पुरुष में लय हो जायगा- (जिसे सूफ़ियों में फ़नाज़िल रसूल कहा गया है) । इसके पश्चात् आदि पुरुष में लय हो जायगा जिसे सूफ़ियों में फ़नाफ़िल अल्लाह कहते हैं । इसी का नाम सच्ची मुक्ति और सच्चा उद्धार है।

सन्तों के घर का यह भेद हरके मत में नहीं मिलता और न इसके जानने वाले हर जगह मिलते हैं। दुनियां में अनेकों मत हैं और अपने अपने यहां के तरीके के मुताबिक उनके पहुँच की कोई न कोई हद भी है लेकिन सब के सब ज़्यादा से ज़्यादा ब्रह्म और पारब्रह्म तक ही पहुंचा सकते हैं । मगर यह माया की हद के पार के स्थान नहीं हैं । इनमें लय होने वाले इनकी आयु के साथ साथ जन्मेंगे और मरेंगे । सन्तों का धाम इनसे भी आगे है सच्चे उद्धार का तरीका जिसे सतपुरुष का धाम या दयाल देश कहते हैं । यहां पर माया नहीं है, इसलिए जो यहां तक पहुंच जायगा उसकी वापिसी नहीं होगी और असली जन्म मरण से छुटकारा उसी को मिलेगा ।

ऊपर बताये हुए अभ्यास से सुरत के ऊपर जो गिलाफ़ माया के चढ़े हुए हैं, वे धीरे-धीरे बदलते जाते हैं । इसी बदलने का नाम सन्तों में जन्म-मरण है । यह जिन्दगी में भी बदलते रहते हैं । बुरी आदत का छुटना और नेकी क़बूल करना नीचे के मुक़ाम से ऊपर के मुक़ाम पर पहुंचना यानी घाट का बदलना, जिन्दगी में ही मरना और नया जन्म पाना है। मरने पर बहुत से संस्कार कट जाते हैं लेकिन भारी संस्कार जीते जी ही कट सकते हैं और यही संस्कारों का काटना माया के गिलाफ़ उतरना है । जब सारे ग़िलाफ़ आत्मा पर से उतर जाते हैं तब आत्मो निर्लेप हो जाती है और यह मोक्ष है ।

सन्तमत में देवताओं आदि की उपासना नहीं की जाती । उन सबकी आयु निश्चित है और जिन मतों में उनकी भक्ति की जाती है वह सच्चे मालिक के भक्त नहीं है । जैसे जिलका जिसमें

बीज न हो । इस तरह की भक्त से सच्चा उद्धार नहीं होता । इसलिए सन्तमत में सिर्फ आदि पुरुष की भक्ति हैं और उसके लिए सहारा सतगुरु और शब्द (या प्रकाश की धार) का लेते हैं ।

सिवाय शब्द या प्रकाश के अभ्यास के, अन्तर में ब्रह्माण्ड की हद के पार, चढ़ाई बहुत मुश्किल है, बल्कि एक तरह असम्भव है । जिस किसी मत में लक्ष्य सन्तों के दयाल देश का नहीं है और न चढ़ाई की आसान युक्ति, उसमें यदि शब्द का अभ्यास भी किया जाय तो सच्ची मुक्ति और उद्धार सम्भव नहीं। पातंजलि ने योग शास्त्र में दस प्रकार के शब्दों का वर्णन किया है जो अन्तर में होते हैं । उनके अनुसार जो कोई आान्तरिक अभ्यास करते हैं, उनको अपने घट में सुनते हैं और मन को एकाग्र करके रस पाते हैं; मगर उन्हें चढ़ाई का भेद और युक्ति नहीं आती और न यह मालूम है कि कौन सा शब्द किस घाट पर होता है और उस घाट तक का रास्ता भी तय नहीं करना चाहते तो सच्चा और पूरा उद्धार नहीं हो सकता । जन्म मरण जारी रहेगा और माया के देश से छुटकारा नहीं होगा ।

इसलिए जो मनुष्य अपना सच्चा उद्धार चाहते हैं उन्हें चाहिए कि :--

(१) वक़्त के पूरे सतगुरु की खोज करें और उनकी शरण ग्रहण करें। उनके चरणों में दिन दिन प्रीति बढ़ावें।

(२) उनसे सुरत शब्द योग का अभ्यास और युक्ति मालुम करके पूर्ण विश्वास, प्रीति और प्रतीत के साथ अभ्यास करें ;

(३) सत्संग करें और सतगुरु की शिक्षा पर चलें । इस तरह करने से आहिस्ता आहिस्ता एक दिन उनकी सुरत कुल मालिक सतपुरुष दयाल के चरणों में पहुँच जायगी ओर सच्चा उद्धार हो जायेगा ।

परमार्थी के रास्ते की रुकावटें

ग़ाज़ियाबाद ता० ५-११ ६५

सत्संगियों के लिए, या जो कोई भी परमार्थ की राह पर चलता है और आत्मा का सक्षात्कार करना चाहता है, उसे अनेक तरह के विघ्नों का सामना करना पड़ता है । (१) भोगों की चाह (Desires) (२) मन में मान (Egoism) और (३) ईर्ष्या का होना ।

(१) भोगों यानी Desires को काटने के कई सरल उपाय हैं । जो छोटी छोटी इच्छायें हैं उन्हें मन को समझा समझा कर काट दो और कुछों को अपनी इच्छा शक्ति से दबा दो, और जो नहीं दब सकतीं उनको धर्मशास्त्र के अनुसार ईश्वर का ध्यान करते हुए भोग कर उनसे उपराम हो जाओ । दुबारा उसमें मत फंसो । लेकिन इतने से ही काम नहीं बनता । भोगने के बनिस्पत भोगने की इच्छा ज़्यादा नुक़सान करती है । मन गुनावन भोगों की उठाया करता है चाहे उसके पास उनके भोगने के साधन हो या न हों। इसका आसान तरीका यह है. कि मन को भजन, सुमिरन और ध्यान में लगा दो ।

(२) मन में मान (Egoism) बड़ा कट्टर दुश्मन है और काटे जाने पर भी चोरी छिपे साधक पर हमला करता रहता है। यही सबसे बड़ा दुश्मन है और सब विकारों की जड़ है । इससे होशियार रहना चाहिए । जब जब मन में मान आवे, किसी बात पर अहंकार पैदा हो, तब तब तुरन्त ही यह ख्याल पैदा करे जो हुआ सब कृपा से हुआ, मालिक की दया से हुआ, मेरी क्या सामर्थ्य जो मैं ऐसा कर सकता । अहं को दीनता में बदल दो । इससे मन का मान घाटता जाता है और ईश्वर प्रेम बढ़ता है। अपने आपको दुनियाँ का सेवक समझो, सबमें ईश्वर का रूप देखो, इससे दीनता आती है।

(२) ईर्ष्या कई तरह की होती है। किसी की बुनियादी (सांसारिक) तरक्की, धन-दोलत, मान-बड़ाई, विद्या आदि को देखकर ईर्ष्या करना निहायत दर्जे का ओछापन है। यह सब अपने संस्कारवश होता है। पिछले जन्मों में जिसने जेसा किया वैसे उसने इस जन्म में पाया। तुमने जैसा किया होगा वैसा तुम पा रहे हो। इसमें ईर्ष्या और जलन की बात ही कया है ? अगर कोशिश करो तो तुम्हें भी वही दुनियाँ के सामान और मान आदर मिल सकते हैं जो औरों के पास हैं और जिनसे तुम्हें ईर्ष्या होती है, लेकिन ऐसी कोशिश किसी खास जगह ओर खास मौक़े पर भले ही मुनासिब (उचित) हो, अन्यथा साधक के लिए यह नीचे को ले जाती है और दुनियाँ में फंसाने के अलावा आगे के लिए संस्कार जमा करती है ।

अगर किसी ऐसे साधक को देखकर जो तुमसे ज्यादा तेज़ चल रहा है और परमार्थ पथ में तुमसे ज्यादा तरक्की कर रहा है, ख्याल चौंप का पैदा होता है तो किसी क़दर फ़ायदेमन्द (लाभदायक हो सकती है। उसे देखकर तुम्हारा हृदय भी यह इरादा करेगा कि तुम भी ऐसी ही सेवा और प्रेम करो जिससे तुम्हारी भी इसी तरह तरक्की परमाथे में हो। यहां तक तो यह मुतासिब (उचित) है, लेकिन सत्संगी भाइयों की तारीफ़ सुनकर, उनकी तरक्की देखकर व्यर्थ जलना और उनसे बैर-विरोध करना और उनकी बुराई करना यह बहुत अधिक विध्नकारक है। कभी किसी की बुराई न करे। जब जब बुराई करने का ख्याल मनमें आवे तब तब य हू सोचे कि अगर तुम्हारे लिए भी कोई इस तरह करे तो तुम्हें कैसा लगेगा। इससे यह ख्याल टूट जाता है ।

परमार्थी के लिए यह ज़रूरी है कि अपना वक्त फ़िजूल ' बातों में ख़र्च न करे । अपने काम में यानी नौकरी, तिजारत जो भी वह करता हो उसमें उतना ही समय व्यतीत करे जितना उसमें ज़रूरत है। अपने घर वालों और अपने निजी कामों में भी कम से कम वक्त जितना मुनासिब हो लगावे । और बाकी समय अपने उद्धार के कामों में लगावे यानी भजन, सुमिरन और ध्यान करे,

महापुरुषों की बानी का पाठ करे और परमार्थी वार्तालाप करे। इससे फ़िज़ूल की बातों से बचेगा और तरक्की हो जायगी। उन लोगों से-जो निपट संसारी और जिनके मन में सिवाय संसार और उसके भोग विलास की बातों के कुछ नहीं है -"दूर रहें। वे ईश्वर से विमुख हैं आर जो कोई उनके सम्पर्क में आवेगा उसे भी ईश्वर से विमुख कर देंगे। उनकी संगत में बैठने से तुम इधर उधर की बातें सुनोगे, दुनियां की चीज़ों और भोगों का हाल सुनकर तुम्हारे चित्त में उनकी याद हरी हो जायेगी। इससे दुख पैदा होगा और भजन व अभ्यास के समय भी वे याद आकर तुम्हारी साधना में विघ्न डालेंगी। जो भी सत्संगी सत्संग में आकर संसार और उनके भोग बिलासों की बातें करते हैं वे अभागे हैं। क्या उन्हें इस काम के लिए अपने घर में फुर्सत नहीं मिलती है। अपना रास्ता खोटा करते हैं और दूसरों के लिए रोड़ा बनते हैं। परन्तु ऐसे लोगों से अधिक अभागे वे है जो सत्संग में आकर उनकी बातें चित्त देकर सुनते हैं। परमात्मा ऐसे लोगों पर रहम करे। (अगर कोई तुम्हारे सामने किसी की बुराई करता है तो यह समझ लो कि वह तुम्हारी भी बुराई किस और के सामने कर सकता है। यह आदत परमार्थ में बड़ा विघ्न डालती है। दूसरों की ऐबजोई (पर-दोष दर्शन) पाप है : ऐसा आदमी तरक्की नहीं कर सकता। बुराई करने की आदत छोड़ो।)

अपने मन की हालत पर चौकसी रखो। देखो कहां कहां जाता है। जो विघ्न ऊपर बताये गये हैं उनसे उसको हंटाते रहो और गुरु के चरणों का सहारा लो। जहां तक हो सके, अपने सत्संगी भाइयों की या अन्य पर्मार्थियों की मदद करो और जो ऐसा न कर सको तो उनका किसी तरह का परमार्थी नुक़सान करने की इच्छा मत करो , इन बातों पर चलने से हर सत्संगी की तरक्की होगी, सतगुरु खुश होकर उसे प्रेमदान देंगे जो उसे संसार सागर से पार कर देगा।

सागर के मोती

सन्त के पास बेठकर आनन्द का अनुभव होता हैं। अगर सौंभाग्य से ऐसा कोई वक्त का पूरा सन्त मिल जाय वही 'गुरु' हैं। वह तुम्हें भवसागर से पार करने आया हैं। उससे प्रेग करो ।

गुर कृपा तब तक होती हैं जब तक उसके कहने में चलते हो वरना वह कृपा जाती रहती हैं।

एक बूंद में ही सागर हैं। जहाँ आत्मा बूंद रूप में मौंजूद हैं वहीं ईश्वर सागर रूप में मौंजूद हैं ।

असली सत्संग यह हैं कि सद्गुरु की वाणी को याद रखे और उनके आदेशों पर चलने का प्रयत्न करे ।

ईश्वर उनकी सहायता करता हैं जो स्वयं पुरुषार्थ करते हैं और उसकी ओर चलते हैं ।

परमसन्त डा० श्री कृष्ण लाल जी महाराज ।